साहित्य - सुधा

ग्यारहवीं कक्षा

आधुनिक भारतीय भाषा

अनिवार्य विषय - हिन्दी

संपादक मंडल

प्रो. डॉक्टर राधाकान्त मिश्र

प्रो. डॉक्टर स्मरप्रिया मिश्र

डॉक्टर अजय कुमार पटनायक

डॉक्टर अंजुमन आरा

डॉक्टर सनातन बेहेरा

प्रकाशक

ओड़िशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन एवं प्रकाशन संस्था

पुस्तक भवन, भुवनेश्वर

साहित्य - सुधा : ग्यारहवीं कक्षा

उच्च माध्यमिक (Higher Secondary) ग्यारहवीं कक्षा परीक्षा के लिए ओड़िशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन और प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित और उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद के द्वारा अनुमोदित।

संपादक मंडल

प्रो. डॉक्टर राधाकान्त मिश्र

प्रो. डॉक्टर स्मरप्रिया मिश्र

डॉक्टर अजय कुमार पटनायक

डॉक्टर अंजुमन आरा

डॉक्टर सनातन बेहेरा

Published by
The Odisha State Bureau of Text Book preparation and production, Pustak Bhavan, Bhubaneswar, Odisha, India

First Edition : 2016/ 10,000 Copies

Reprint : 2017/ 20,000 Copies

Publication No : 189

ISBN : 978-81-8005-369-6

©Reserved by the Odisha State Bureau of Text-Book preparation and production, Bhubaneswar, No part of this publication may be reproduced in any form without the prior written permission of the publisher.

Type Setting & Printing : M/s Print-Tech Offset Pvt. Ltd.

Price : 51.00 (Rupees Fifty one only)

आमुख

कहावत है- देर आए दुरुस्त आए। उच्च माध्यमिक स्तर की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने में वर्षों से संस्था संलग्न है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी भाषा और साहित्य पर पाठ्य-पुस्तक तैयार करने का काम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज वह पूरा हो रहा है।

विद्वान् लेखक-संपादक मंडल ने इस विविध-वर्णी पुस्तक का प्रणयन परिश्रम से किया है। इसमें उच्च माध्यमिक स्तर और विद्यार्थियों की जरूरतों का ध्यान रखा गया है।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

श्री उमाकान्त त्रिपाठी
निदेशक
ओड़िशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन एवं प्रकाशन संस्था
पुस्तक भवन, भुवनेश्वर

भूमिका

उच्च माध्यमिक स्तर की आवश्यकता के अनुसार राष्ट्रभाषा हिन्दी की एक पाठ्य-पुस्तक तैयार करना कठिन काम था। क्योंकि एक ही पुस्तक में गद्य, पद्य, भाषा-अध्ययन, प्रयोजनमूलक भाषा-शिक्षण – सबको समेटना था।

दूसरी बात यह थी कि जो विषय समाविष्ट किए जाएँ, उनको समझना और समझाना भी आवश्यक है। इसलिए मूल पाठ के साथ कुछ टिप्पणियाँ देना जरूरी समझा गया। यह सामग्री अध्यापकों और छात्र/छात्राओं-सबके लिए उपयोगी हो, इसका ध्यान रखा गया है।

एक सत्र में कितना बोझ उठाया जा सकता है, यह प्रश्न भी सामने रहा। उसीके अनुरूप विषय-चयन किया गया है।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रश्न और अभ्यास भी दिए गए हैं। आशा है कि भाषा सीखने कि लिए और साहित्य को समझने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी अभ्यास- कार्य रुचि लेकर करेगा। इसीसे भाषा की क्षमता जल्दी बढ़ेगी।

विशाल हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में से प्रतिनधिमूलक संकलन बनाने का यह प्रयत्न सबको पसंद आएगा, इस विश्वास के साथ हम पुस्तक को प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस कार्य में संस्था के निदेशक श्री उमाकान्त त्रिपाठी ने सर्वदा उत्साहित किया, शीघ्र समाप्त करने की व्यवस्था की, सचिव श्री शिवप्रसाद जेना तथा उनके कर्मचारियों ने बड़ी तत्परता से सहयोग दिया, वे सब साधुवाद के अधिकारी हैं।

लेखक-संपादक मंडल

सूची पत्र

काव्य-पाठ पृष्ठ

१. कबीरदास - दोहे 01

२. सूरदास - विनय के पद, बाल लीला 13

३. मीरा -पद 16

४. बिहारीलाल - दोहे 22

५. जयशंकर प्रसाद - ले चल मुझे 40

६. सुमित्रानंदन पंत- भारतमाता 47

७. नागार्जुन - बहुत दिनों के बाद 54

८. 'अज्ञेय' - हिरोशिमा 60

९. दुष्यंत कुमार - हो गई है पीर पर्वत-सी 66

१०. केदारनाथ सिंह- रोटी 73

गद्य-पाठ

निबंध

१. प्रेमचंद - जीवन में साहित्य का स्थान 80

२. जैनेद्र कुमार - बाजार दर्शन 95

३. रामधारी सिंह दिनकर - ईर्ष्या, तू न गई मेरे मन से 109

४. रामविलास शर्मा - अतिथि 120

कहानी

१. प्रेमचंद - बूढ़ी काकी 127

२. जयशंकर प्रसाद - ममता 143

३. भगवती चरण वर्मा - कुँवर साहब का कुत्ता 153

४. उदय प्रकाश - अपराध 165

व्याकरण, कार्यालयी हिन्दी और रचनात्मक लेखन

१. क्रिया 172

२. काल 176

३. उपसर्ग और प्रत्यय 179

४. संक्षेपण 189

५. निबंध- लेखन 198

६. अपठित गद्यांश और पद्यांश 225

M.I.L (HINDI)
First Year
DETAILED SYLLABUS

Time - 3 Hours **Full Marks - 100**

पाठ्य पुस्तक : साहित्य-सुधा भाग-1, ओड़िशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन संस्था, भुवनेश्वर

Unit - I: अपठित गद्यांश / काव्यांश: (15)

1. अपठित गद्यांश - (गद्यांश पर आधारित बोध, प्रयोग, संक्षेपण, शीर्षक पर आधारित लघूत्तरी प्रश्न)
2. काव्यांश पर आधारित अति लघूत्तरी प्रश्न -

Unit - II: कार्यालयी हिन्दी, रचनात्मक लेखन और व्याकरण: (25)

1. संक्षेपण
2. निबंध लेखन
3. व्याकरण
   (i) उपसर्ग और प्रत्यय
   (ii) क्रिया
   (iii) काल

Unit - III: काव्य-भाग (25)

(i) कबीरदास - दोहे
(ii) सूरदास- विनय तथा बाल लीला
(iii) मीरा- पद
(iv) बिहारी-दोहे
(v) जयशंकर प्रसाद- ले चल मुझे
(vi) सुमित्रानंदन पंत-भारतमाता

(vii) नागार्जुन - बहुत दिनों के बाद

(viii) अज्ञेय - हिरोशिमा

(ix) दुष्यन्त कुमार - हो गई है पीर पर्वत-सी

(x) केदारनाथ सिंह - रोटी

प्रश्न : (i) विकल्प चयन-

(ii) एक वाक्य में उत्तर-

(iii) दो वाक्यों में उत्तर -

(iv) तीन वाक्यों में उत्तर -

(v) दीर्घ उत्तर -

Unit - IV: गद्य-भाग (25)

(i) प्रेमचंद - जीवन में साहित्य का स्थान

(ii) जैनेन्द्र कुमार - बाजार दर्शन

(iii) रामधारी सिंह 'दिनकर'- ईष्या, तू न गई मेरे मन से

(iv) रामविलास शर्मा - अतिथि

प्रश्न- पद्य-पाठ के अनुरूप

Unit - V: कहानी (10)

(i) प्रेमचंद - बूढ़ीकाकी

(ii) जयशंकर प्रसाद - ममता

(iii) भगवतीचरण वर्मा - कुँवर साहब का कुत्ता

(iv) उदयप्रकाश - अपराध

प्रश्न- दीर्घ उत्तरमूलक 2 प्रश्न

कबीरदास (१३९९-१५१८ ई.)

कहते हैंकि कबीरदास का जन्म हिन्दू परिवार में हुआ और पालन-पोषण नीरू नाम के मुसलमान जुलाहे के घर पर हुआ। वे रामानन्द के शिष्य बताये जाते हैं। कबीर निम्न वर्ग में पैदा हुए। शिक्षा ज्यादा नहीं मिल पाई, लेकिन जीवन का अनुभव खूब मिला। सामान्य जनता से मिलते रहते थे, सत्संग करते थे। वे बड़े बुद्धिमान थे। अपने विचारों के बल पर अपना मत बनाया, जो लोगों के द्वारा आसानी से समझा जा सके।

वे बाहरी धार्मिक क्रियाकलापों पर जोर न देकर मानसिक पवित्रता, श्रद्धा, प्रेम, शुद्ध आचरण और ईश्वर-भक्ति पर जोर देते थे। उन्होंने माला जपने, तिलक लगाने, मूर्ति पूजा करने का विरोध किया। सभी प्रकार के भेद भाव को दूर करने का प्रयास किया। प्रेम का महत्व समझाया। हिन्दू और मूसलमानों के कर्मकांडों की खिल्ली उड़ायी। उदार, व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया। अहंकार त्यागने को कहा। उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है। उनका राम दशरथ-सुत नहीं, अजन्मा परमात्मा है। अद्वैत सिद्धांत को मानें तो ईश्वर एक है, अनादि अनंत है। जीव उनका अंश है। संसार माया है। मनुष्य जीवन अनमोल है। साधना करते करते ब्रह्म को पाना है। इसको समझाने के लिए उन्होंने सत्संग करना, स्मरण, कीर्तन आत्मनिवेदन को उत्साहित किया। भक्ति को समझाने के लिए प्रेम-व्यापार से तुलना की।

कबीरदास साधारण जनता की भावनाओं को उन्हींकी भाषा में कहने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनके दोहे साहित्य-प्रेमी और

अनपढ़ जनता सभी को समान रूप से प्रिय लगते हैं। बात बात में कबीर के दोहे गाकर लोग जीवन के संकट समय में रास्ता ढूँढ़ लेते हैं।

कबीरदास

दोहे

गुरु गोविंद तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै हरि भजै, तब पावै दीदार ।।१।।

चकई बिछुरी रैन की, आई मिले परभाति।
जे न बिछुरे राम सों, ते दिन मिले न राति ।।२।

सतगुरु हम सौं रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।३।।

कस्तुरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहि।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं ।।४।।

साईं इतना दीजिए जामै कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।५।।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगो कब्ब।।६।।

जेहि घटि प्रीति न प्रेम रस, पुनि रसना नहिं राम।
ते नर आइ संसार में, उपजि खाए बेकाम।।७।।

मणिषां जन्म दुरलभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झरि पर्‌या, बहुरि न लागै डार।।८।।

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौं काल।।९।।

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समानां, यह तत्त कहत अज्ञानी ।।१०।।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपनां, मुझ-सा बुरा न कोय।।११।।

माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनवां तो दसदिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।१२।।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दोउ न समाहिं।।१३।।

पोथी, पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होई ।।१४।।

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोई।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे को होई।।१५।।

१. कबीरदास कहते हैं कि गुरु और गोविन्द (ईश्वर) एक ही हैं, उनमें कोई पार्थक्य नहीं है। बाकी जो देखते हो, वह सब मिथ्या है। आपा याने अहंकार को छोड़ दो तो ईश्वर के दर्शन (दीदार) मिलते हैं।

२. संसार में मिलन और विच्छेद लगा रहता है। दुःख और सुख के दिन बदलते रहते हैं जैसे रात (रैन) को चकवा-चकवी बिछुड़ जाते हैं तो प्रभात (दिन) होते ही मिल भी जाते हैं। लेकिन जो जीव (आत्मा) राम (ईश्वर) से बिछुड़ते हैं, वे दिन या रात कभी नहीं मिल पाते हैं। सर्वदा दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है।

३. गुरु के द्वारा उपदेश पाकर शिष्य की आत्मा प्रसन्न हो जाती है। एक दिन गुरु ने ईश्वर की महिमा का ऐसा वर्णन किया (प्रसंग कहा) कि प्रेम (भक्ति) का बादल बरसा और शिष्य का सारा शरीर उससे सराबोर हो गया। ईश्वर प्रेम की रसमयी-कथा सुनकर आनंद मिला।

४. यहाँ तत्व की एक बात कही गई है। वास्तव में ईश्वर या परमात्मा कहीं बाहर नहीं है, वह तो शरीर के अन्दर है; हृदय में विराजमान है। लेकिन साधक या भक्त उसे मन्दिर, मस्जिद आदि बाहरी स्थानों में ढूँढ़ता रहता है। कस्तूरी-मृग की नाभि (कुण्डल) में कस्तूरी रहती है। पर उसका सुवास पाकर मृग उसे वन-वन में ढूँढ़ता फिरता है। यह व्यर्थ प्रयास करता है। अर्थात बाहरी पूजा-प्रार्थना छोड़ ईश्वर को अपने भीतर ढूँढ़ो।

५. कबीरदास जीवन में संतोष का महत्व समझाते हैं। लोग धन कमाने के लिए जीवन भर भागते फिरते हैं। मूल्यवान जीवन ईश्वर-चिंतन छोड़ सांसारिक अनित्य बातों में लगा रहता है। कवि ईश्वर से माँगता है कि मुझे ज्यादा धन नहीं चाहिए। इतना धन दीजिए कि मेरा गुजारा चल जाय और कोई भक्त, साधु अतिथि आ जाय तो उसका सत्कार कर सकूँ।

६. मनुष्य की जिन्दगी अनिश्चित है। इसलिए जो भी काम करना है उसे तुरंत करना चाहिए। कल का काम आज कर लो। क्योंकि प्रलय या मृत्यु या नाश कब आ जाय, पता नहीं। तब काम करने का मौका नहीं मिलेगा।

७. जिस व्यक्ति के हृदय में प्रीति (श्रद्धा) नहीं, न ही जिसे प्रेम (भक्ति) का अनुभव होता है, जिसकी जीभ (रसना) राम का भजन नहीं करती, वह इस संसार में व्यर्थ जन्म लेता है, खाता पीता और जीता है। बिना ईश्वर स्मरण के जीवन व्यर्थ है।

८. मनुष्य का जन्म आसानी से नहीं मिलता। दुर्लभ होता है। मानव शरीर बार बार नहीं मिलता। इसलिए इसका सदुपयोग करो। क्योंकि तरुवर (पेड़) से फल एकबार झड़ जाय तो फिर डाल (डार) से नहीं लग सकता। बीता जीवन काल लौट नहीं आता।

९. कबीर कहते हैं कि सुमिरन (ईश्वर का स्मरण या भजन) ही सार बात है। बाकी सारे सांसारिक कार्य व्यर्थ (जंजाल) हैं। कबीर कहते हैं उन्होंने काफी खोजबीन और चिंतन-मनन

करके इस सत्य को पाया है। जीवन को शुरु से अंत तक देखा। एक जीवन तो दूसरा तत्व काल (मरण) ही है।

१०. मनुष्य के शरीर में जीवात्मा है, बाहर सर्वत्र ईश्वर परमात्मा है। जैसे पानी के कुंभ में जल है और बाहर जलाशय का जल है। ये दोनों तत्व एक हैं। जैसे कुंभ फूट जाता है तो भीतर का जल बाहर की विशाल जलराशि के साथ मिल जाता है, वैसे शरीर नष्ट हो जाता है तो आत्मा परमात्मा से जाकर मिलकर एकाकर हो जाती है। अद्वैतवादी दर्शन है।

११. कबीर उपदेश देते हुए आत्मसमीक्षा के रूप में कहते हैं कि आदमी अपने को अच्छा मान लेता है और दूसरों की बुराई ढूँढ़ता रहता है। लेकिन कबीर कहते हैं जब मैंने अपने दिल में अन्तर्दृष्टि से देखा तो मैं ही इस संसार में सबसे बुरा आदमी हूँ। अतएव दूसरों के अच्छे गुणों को देखो। अपने बुरे गुणों को पहचानो और उनसे बचो।

१२. यहाँ बाहरी क्रिया की अपेक्षा हार्दिक श्रद्धा या प्रेम भाव पर जोर है। माला जपते समय माला हाथ में फिरती रहती है, उधर मन में अनेक इच्छाएँ जागती रहती हैं। जीभ खाने को तरसती है। (जीभ फिरै मुखमाहिं) और मन जो जप में लगा रहना चाहिए वह तो तरह-तरह की चिंता-फिक्र में दुनिया भर घूमता रहता है। यह कैसा ईश्वर-स्मरण है ?

१३. मनुष्य का अहंकार (मैं) सर्वदा उसके साथ है। वह कहता है-मैंने यह काम किया, मैंने वैसा किया। उसका घमंड सदा बोलता है। तब ईश्वर उसके मन में नहीं आता। जब वह अहंकार (मैं) मिट जाता है, तब ईश्वर (हरि) की अनुभूति

होती है। भक्ति मार्ग (प्रेम गली) में दो के लिए जगह नहीं होती, वह काफी सँकरी है। एक अद्वितीय ईश्वर ही सर्वत्र है।

१४. पोथी पढ़ना-शास्त्रों का ज्ञान। जग मुआ-संसार के लोग मरते हैं, लगे रहते हैं। कोई ज्ञानी या पंडित नहीं होता क्योंकि बाह्य ज्ञान से मन में भक्ति नहीं जागती। 'प्रेम' शब्द में ढाई अक्षर है-उसे जो अनुभव करता है, पढ़ता है, वही सच्चा पंडित है।

१५. लोग दुःख के समय ईश्वर को पुकारते हैं। सुख के वक्त उसे भूल जाते हैं। अगर सुख में भी ईश्वर स्मरण होता रहे तो दुःख नहीं आएगा।

कबीर की काव्यगत विशेषताएँ

१. कबीर उदार मानववादी हैं। वे जातिपाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि किसी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानते हैं। इन सारे नियम-बंधनों का खुलकर विरोध करते हैं।

२. कबीर निर्गुणवादी हैं, अर्थात् वे ब्रह्म को निराकार निर्गुण, सूक्ष्म तत्व मानते हैं। इसलिए मूर्तिपूजा, अवतार (राम कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि) नहीं मानते। माला-तिलक, पूजा-पाठ, तीर्थव्रत, रोजा–नमाज को व्यर्थ समझते हैं। श्रद्धा और भक्ति से हीन ऐसे बाहरी कर्मकांड की खिल्ली उड़ाते हैं। इनको ढोंग समझते हैं। हिंदू हो मुसलमान हो कबीर धर्मों के बाहरी आचरण की दिखावा मानते हैं और उसकी आलोचना करते हैं। सच्चे प्रेम को महत्त्व देते है।

३. वे हृदय के प्रेमभाव को, भक्ति को सर्वाधिक महत्व देते हैं।वे अद्वैतवादी हैं। ब्रह्म को सत्य और संसार को अनित्य, नाशशील, मायामय, मिथ्या बताते हैं। सत्संग और सदाचार पर बल देते हैं। आत्मा और परमत्मा के मिलन की बात करते हैं।

४. वे वेदादि शास्त्रज्ञान को भी अनावश्यक मानते हैं, अपने अनुभव, प्रत्यक्षज्ञान, आँखों देखी बातों पर जोर देते हैं।

५. इसलिए उनकी कविता काफी भावात्मक, मार्मिक और सांसारिक अनुभव पर आधारित है। वे उपदेश देने के लिए जीवन की अनुभूतियों और वस्तुओं को चुनते हैं। उनकी उपमा-तुलना दैनन्दिन जीवन की घटनाओं पर आधारित है। इसलिए उनके दोहों को 'साखी' (साक्षी = आँखों देखी) कहा जाता है। उनके गेय पद भी हैं जिनको उनके शिष्यों ने लिख लिया है।

६. कबीर की भाषा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा है। अनेक स्थानों में घूमते रहने के कारण उनमें विभिन्न बोलियों के शब्द भरे हुए हैं। पर सरल कथन है। काव्यात्मक अलंकार-योजना नहीं है। फिर भी उनका काव्य उच्च कोटि के भावों विचारों से भरा है।

७. लोग कबीर के दोहों को गाकर जीवन में प्रेरणा, मार्गदर्शन और सुख प्राप्त करते हैं।

सूरदास (१४७८-१५८३)

महाकवि सूरदास का जन्म, दिल्ली के निकट ब्रज की ओर स्थित 'सीही' नामक गाँव में सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। कहा गया है कि वे जन्मांध थे। यह भी कहा है कि वे बाद में अंधे हो गए। जो हो, उनका साहित्य उनके गहरे जीवानानुभव का परिचय देता है। विद्याध्ययन के बाद वे विरागी होकर 'गऊघाट' में रहते थे। भजन गाते थे। बहुत अच्छे संगीतज्ञ थे। वहीं वल्लभाचार्य के साथ भेंट हुई। उनके शिष्य हो गए। आचार्य ने सूरदास को अपने आराध्य बालकृष्ण श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा में लगा दिया। सूरदास ने भागवत के आधार पर कृष्ण लीला से संबंधित 'सूरसागर' जैसा प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा।

सूरदास कृष्ण भक्त थे। पहले वे विनय के पद लिखते और गाते थे, जिसका विषय भक्त की दीनता और नम्रता है। वल्लभाचार्य के आदेश से वे भक्ति के पद लिखने और गाने लगे।

सूरदास वात्सल्य रस के श्रेष्ठ कवि हैं। कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन किया है। बच्चे के सभी मनोभावों के चित्र उन पदों में मिलते हैं। कृष्ण की लोकरंजनकारी लीलाओं के वर्णन में वे रम गए। राधाकृष्ण का प्रेम वर्णन भी किया। वे कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति, शरणागति और संपूर्ण भरोसा रखते थे। श्रृंगार के संयोग और वियोग पदों का वर्णन, गोपी उद्धव संवाद (भ्रमरगीत) सगुण भक्ति का सबल प्रतिपादन आदि में सूर की काव्यकला निखर उठी है।

ब्रजभाषा को उन्होंने काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। उनके पदों में भावात्मकता, चित्रात्मकता, आलंकारिकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता और बिंवविधान सर्वत्र मिलते हैं।

सूरदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उन्हें हिन्दी काव्य का 'सूर्य' कहा गया है- यह उक्ति प्रसिद्ध है-'सूर सूर तुलसी ससि' ।

विनय के पद

१. अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगा मीठे फल को रस अंतरगत ही भावे।।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जाने जो पावै।।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु, निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारही तातैं सूर सगुन पद गावै।।

२. मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ी जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवै।।
कमल- नैन को छाँडि, महातम, और देव कौं ध्यावै।
परमगंग को छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।।
जिहीं मधुकर अंबुज रस चाख्यौ, क्यों करीलफल खावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।

३. प्रभु मोरे अवगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करौ।।
इक नदी इक नार कहावत मैलो नीर भरौ।
जब दोऊ मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम धरौ।।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परौ।।
यह दुबिधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरौ।
एक जीव एक ब्रह्म कहावत, सूर स्याम सगरौ ।
अबकी बार मोंहिं पार उतारो नहीं पन जात टरौ।।

बाललीला

४. कहन लगै मोहन मैया मैया।
पिता नन्द सों बाबा, अरु हलधर सों भैया।।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।
दूर कहुँ जनि जाहु लला रे, मारेगी काहू की गैया।।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर घर लेत बलैया।
मनि खम्भन प्रतिबिम्ब बिलोकत,नचत कुँवर निज पैया।।
नन्द जसोदाजी के उर तें, इहि छवि अनत न जैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को चरननि की बलि जैया।।

५. सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराई कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनि धरै पैया।।
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति, उर आनँद भरि ले बलैया।।
कबहुँक बल को टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलो दोउ भैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवौ मेरो बाल कन्हैया।।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक, अति प्रताप बालक नँद रैया।।

शब्दार्थ/ भावार्थ

१- अविगत-गति = अव्यक्त ब्रह्म की महिमा कुछ कही नहीं जा सकती। शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। वेदों में उसे ''नेति नेति'' (ऐसा नहीं - ऐसा नहीं) कहा गया है। उसका मर्म रस तो अन्तरतम या हृदय के भीतर यानी मन ही मन अच्छा लगता है। उसका अनुभव परम स्वाद अत्यंत आनंददायक है। उससे मन में अपरिमित संतोष मिलता है। वह ब्रह्म (निर्गुण) मन से या वाणी या शब्दों के जरिये अगम-अगोचर = अनजाना रह जाता है। जो उसे जानता है, वही अनुभव करता है। रूप रेख..... कित धावौ = मन चिंतन-मनन करने के लिए अथवा स्नेह-संबंध स्थापित करने के लिए किसी इन्द्रिय गोचर विषय को खोजता है। चूँकि अव्यक्त ब्रह्म का कोई रूप, आकार, गुण, पहचान या युक्ति नहीं है, मन को कोई अवलंबन नहीं मिलता; वह भटकता रह जाता है। सब विधि.....गावै-निर्गुण निराकार ब्रह्म का गुणगान असंभव जानकर सूरदास सगुण ब्रह्म (भगवान श्रीकृष्ण) की लीलाओं का गान करते हैं।

२- ''जैसे उड़ि.....आवै - जहाज समुद्र में चला जा रहा है। उस जहाज में रहनेवाला पक्षी उड़ कर बहुत दूर आकाश में जाने पर भी आखिर में उसी जहाज पर उसे लौटना पड़ता है। इसी प्रकार कवि कहता है कि मेरे मन का एकमात्र आश्रय भगवान हैं। सांसारिक कार्यों में जितना मगन रहो, अंत में भगवान की शरण में जाना पड़ता है। कमलनैन

ध्यावै = कमलनयन श्रीकृष्ण का आश्रय छोड़ कौन मूर्ख होगा जो अन्य देवताओं का ध्यान करेगा ? गंगा पास में है, तो कौन मूर्ख व्यक्ति प्यास बुझाने के लिए कुआँ खोदेगा? अर्थात् ऐसा कोई नहीं करेगा। जिस भौंरे ने एक बार कमल का मकरंद चखा है, वह करील फल नहीं खाता।

३- हे प्रभी, मेरे अवगुणों– की मन में न रखिए क्योंकि आप तो समदर्शी हैं– गुणी उपर अगुणी, दोषी यथा निर्दोष को समान दृष्टि से देखते हैं। जेसे नदी और नालेका स्वच्छ और गंदा पानी गंगामें पड़कर गंगाजल हो जाता है, वेसे आप संबको समान कर देते हैं। पारस व्याध की कटारी के लेहे का और पूजा क लेहे को एक समान सोना देता हैं। एक जीवत्मा ह, सर्वत्र व्याप्ट है, इसरा परमात्मा है, दोनो बराबर हैं। आप पतितों के उहदारक है। मैं पतित हूँ, मुझे भवसागर से पार कर दीजिए नहीं वों आपकी प्रतशा दल जाएगी।

४- कृष्ण बड़े हो रहे हैं। मोहन अब माँ-माँ (मैया-मैया) कहते हैं, नन्द जी को '' बाबा'' कहकर पुकारते है। बलराम (हलधर) को भैया कहते हैं। (जब वे बाहर कभी निकल जाते हैं तो) यशोदा ऊँचे स्थान पर चढ़ कर उनसे कहती- बेटा (लला) रे, दूर कहीं मत जाना। (काहूकी) किसी की गैया (गाय) मार देगी। गोपी-ग्वाल कृष्ण के खेल देखकर खुश (कौतूहल) होते हैं। घर-घर में लोग कृष्ण की बलैया (दोनों हथेलियों की मुट्ठी बनाकर बच्चे के सिर से

छुलाकर अपने सिर छुना-यह क्रिया अपने को बच्चे पर न्योछावर करना है) लेते हैं। कृष्ण मणि के खंभों पर प्रतिबिम्ब देखते हैं और नाचते फिरते हैं। अपने पैरों (पैया) से नाचते-कूदते हैं। कृष्ण का यह सुंदर रूप नन्द-यशोदा के मन में सर्वदा बैठा रहता है। अन्यत्र नहीं जाता। सूरदास कहते हैं- हे प्रभो, मैं तुम्हारे चरण-कमलों के दर्शन का अभिलाषी हूँ। मैं अपने को उन पर न्योछावर करता हूँ।

५- माता यशोदा कान्ह (कृष्ण) को चलना सिखाती है। कृष्ण भूमि पर पाँव (पैया) रख कर चलने लगते हैं तो लड़खड़ा जाते हैं, तब यशोदा घबराकार (अरवराइ कर) उनका हाथ (पानि) पकड़ लेती है (कहावत)। यशोदा कभी तो कृष्ण सुन्दर मुख को निहारती है, देखती है, कभी आनन्द से भरकर उनकी बलैया लेती है। (अपने को न्योछावर करती है।) कभी बलदेव (बल को पुकार कर कहती है कि इसी आँगन में दोनों भाई मिलकर खेलो। कभी कुल-देवता से शुभ विनती करती है (मनावति) कि मेरे नन्हे (बाल) कन्हैये को चिरायु करना। सूरदास कहते हैं कि प्रभु तो सबके सुखदाता है, नन्दराजा के प्रतापशाली बेटे हैं।

मीराबाई (१४९८-१५४६)

मीराबाई मेड़ता (राजस्थान) के रत्नसिंह की इकलौती पुत्री तथा प्रख्यात राजा राव दूदाजी की पौत्री थी। उनका विवाह उदयपुर के राणा भोजराज से हुआ था। परंतु भोजराज का देहांत जल्दी हो गया । मीरा विधवा हो गईं।

बचपन से ही मीरा कृष्ण की भक्त थीं। वैधव्य के बाद संसार उनको विषमय लगा और वे गिरिधारी के प्रेम में सर्वदा निमग्न रहने लगीं। उनकी भक्ति में अनन्यता और तल्लीनता के कारण वे श्रीकृष्ण को अपना पति मानती थीं। वे संत रैदास की शिष्या बन गईं। फिर क्या था? सांसरिक व्यवहार की परवाह न कर मंदिर और सत्संग जाने लगीं। परिवार के लोगों को अच्छा नहीं लगा। उनको बार-वार सताया गया। मीरा ने गोस्वामी तुलसीदास से सलाह माँगी। तुलसी दास ने लिख भेजा- जाको प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि वैरी सम जदपि परम सनेही।'' मीरा द्वारका चली गईं। वहाँ रणछोड़ (जरासंध से नहीं लड़ने के कारण कृष्ण को रण छोड़कर भागने वाला ''रण छोड़ कहा गया) द्वारकाधीश के मंदिर में नाच-गाकर प्रेमनिवेदन करती रहीं। अंत में उन्हीं के विग्रह में विलीन हो गईं।

मीरा का जीवन विषादमय रहा। माता, अन्य कुटुंबियों की मौत, जौधपुर, मेड़ता और मेवाड़ राज्यों की लड़ाइयों, बाबर, बहादुर शाह आदि का आक्रमण देख वे संसार को तुच्छ मानने लगीं। कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति बढ़ने लगी। अतएव वे -

१- सर्वदा संसार से विराग और कृष्ण के अनुराग की बात करती हैं।

२- वे कृष्ण को अविनाशी ईश्वर कहती हैं। ब्रह्म निर्गुण हों, लेकिन मीरा प्रत्यक्ष रूप से गोपीभाव से कृष्ण को अपना पति मानती हैं।

३- उनकी भक्ति दृढ़ है, एकमात्र गिरिधर के प्रति है, प्रेम-भक्ति सच्ची है, तल्लीनता है। दिखावा या ढोंग नहीं है ।

४- सहज, स्वाभाविक, सरल भावों को व्यक्त किया।

५- भाषा भी सरल राजस्थानी हिंदी है।

६- गीतात्मकता है। अतएव मीरा के गीत पूरे देश में अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं।

मीराबाई

१- बसो मेरे नैनन में नंदलाल
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्तबच्छल गोपाल।

२- मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाँडि दई कुल कानि, कहा करै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बात फैल गयी होनी होय सो होई।
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई।
दासी मीरा लाल गिरिधर, तारो अब मोही।

३- माई री, मोहि लिया गोबिन्द मोल।
तूं कहा छाणे, मैं कहा चौडे, लियो बजंता ढोल।
कोई कहै मुंहघो कोई कहै सुंहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरौ, लियो री अमोलिक मोल।
याहो कूँ सब लोग जानत हैं, लियो री आँखि खोल।
मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्यौ पूरब जनम की कोल।

४- पग घूँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की आपही हो गयी दासी रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहै कुलनासी रे।
विष का प्याला राणाजीने भेज्या, पीवत मीरा हाँसीरे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अबिनासी रे।

शब्दार्थ-भावार्थः

१- मीरा नंदसुत (नंदराजा के प्रिय पुत्र) से प्रार्थना करती हैं कि तुम सदा मेरी आँखों में बस जाओ। हे प्रभो, तुम्हारी मूर्ति अत्यंत मोहक है। साँवला रूप है। आँखें बड़ी-बड़ी हैं, सुंदर हैं। तुम्हारे होंठों पर अमृत बरसानेवाली यह मुरली शोभा पा रही है (राजति)। तुम्हारी छाती पर बैजयंती माला झूल रही है। कमर से बंधी करधनी के छोटे-छोटे घूँघरू शोभित हो रहे हैं। नूपुर की मधुर ध्वनि (सबद रसाल) है। ऐसे मनोहारी रूपवाले श्रीकृष्ण संत जनों को सुख देते हैं और भक्तों के प्रति कृपालु हैं। स्नेहशील हैं।

२- मीराबाई कहती हैं कि मेरे लिए गिरिधर गोपाल (श्रीकृष्ण) को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। जिसके सिर पर मयूर के पंखों का मुकुट है, वही मेरे पति हैं। मैंने कुल की मर्यादा छोड़ दी है। कोई मेरा क्या कर लेगा ? मैंने संतों के साथ बैठकर लोकलाज छोड़ दी है। आँसुओं के जल से सींच-सींच कर मैंने प्रेम की लता को बढ़ाया है। गिरिधर से मेरे इस संपर्क की खबर चारों ओर फैल गई है। इसलिए जो होगा से होगा, मुझे उसकी परवाह नहीं है। अब मैं भगतों (भक्तों) को देखकर राजी (खुश) होती हूँ और सांसारिक व्यवहार (जगत) से दुःखी हूँ। हे गिरिधर, मैं तो आपकी दासी हो गई हूँ, इसलिए मेरा उद्धार करो।

मध्य काल में सांसारिक बंधन, पारिवारिक मर्यादा (और मीरा तो राजघराने की रानी थी) लोकलज्जा का जबर्दस्त असर था। उस समय घरबार छोड़ मीरा द्वारकाधीश के मांदिर में उनके सामने गातीं-नाचतीं, भक्तों के साथ मिलती थीं । ऐसे व्यवहार उनके कुटुंब के लोगों को पसंद नहीं थीं। उनको अनेक कष्ट दिया जाता था। लेकिन 'मेरो पति सोई' की घोषणा करके मीरा ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति और शरणागति का इजहार किया। ऐसा साहस दुर्लभ है।

३- मीरा कहती हैं - री माँ, मुझे गोबिन्दजी ने मोल (खरीद) लिया है, खरीद लिया है; अर्थात् वशीभूत कर लिया है। तू कहती है कि छाणे (छिपकर) किया, लेकिन मैं कहती हूँ, नहीं चौड्डे में (सबके सामने (या खुल्लम खुल्ला) लिया है। ढोल-नगाड़े बजाकर लिया है। कोई कहता है महंगे में लिया, कोई कहता है कि सस्ते में लिया (मुहँगो-सुहँगो)। तराजू में तोल कर, अच्छी तरह परख कर मोल लिया। कोई कहता है वे साँवले हैं, कोई कहता है, गोरे हैं, जो भी हैं देख सुन कर अमूल्य मूल्य देकर (भक्ति देकर) खरीद लिया। सभी जानते हैं कि मैंने अपनी आखें खोलकर देखा और लिया। मेरे प्रभु ने मुझे दर्शन दीजिए। क्योंकि आपने पूर्व जन्म में कोल (प्रतिज्ञा) की थी। अनन्य भक्ति भाव तो पूर्व जन्म के पुण्य से मिलते हैं। गोपियों से कृष्ण ने मिलने का वादा किया था। मीरा कहती है कि वह पूर्व जन्म में गोपी थी और उसी पुण्य से इस जन्म में प्रभु के दर्शन पा गईं।

४- मीरा कहती हैं- मैंने प्रभु के प्रति अपने को समर्पित कर दिया। उनको प्रसन्न करने के लिए गाया, नाची। पाँवों में घुँघरू बाँध कर नर्तकी (देवदासी) की तरह नाची। मैं तो अपने नारायण की खुद दासी बन गई। इस व्यवहार से लोग नाराज हो गए। कोई मुझे बावरी (पगली) कहता है तो कोई कुलनासी (कुल की मर्यादा नष्ट करने वाली) कहता है। मुझे उसकी परवाह नहीं है। राणाजी (मीरा के देवर राजा विक्रम सिंह) ने मुझे मार डालने के लिए विष का प्याला भेजा (प्रसाद के धोखा देकर)। मीरा उसे खुशी-खुशी (हाँसी) पी गई। मीरा के प्रभु अविनाशी गिरिधर तो उससे सहज-स्वाभाविक ढंग से मिले। मीरा विष पीकर मरी नहीं। अविनाशी प्रभु ने उनकी रक्षा की, उनसे मिले।

बिहारी लाल (१५९५-१६६३)

बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर में १५९५ ई. को हुआ और निधन १६६३ ई. को। वे ओड़छा, आगरा और अंत मे आमेर दरबार में सुखपूर्वक रहे।

बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के लिखित साहित्य का खूब अध्ययन किया। प्रतिभाशाली तो थे ही। शाहजहाँ के दरबार में आगरा गए। वहाँ अरबी, फारसी, उर्दू पढ़ी। मथुरा के ब्राह्मण थे, ब्रज भाषा में प्रवीण थे।

तत्कालीन परिस्थितियाँ भक्ति मार्ग को छोड़ चुकी थीं। सांसारिक जीवन के अनुकूल थीं। मुगल शासन प्रतिष्ठित हो चुका था। छोटे-छोटे राजा भी सुरा-सुंदरी में डूबे हुए थे। श्रृंगारिकता, आलंकारिकता, विलासप्रियता का युग था। बिहारी ने उसी के अनुसार कविता लिखकर काफी यश ओरे धन कमाया। जीवन में कभी-कभी तिक्त अनुभव भी होता था। उसकी झाँकियाँ भी उनके (नीति) दोहों में मिलती हैं।

भाव और भाषा दोनों में बराबर अधिकार रखनेवाले बिहारी के दोहे बड़े मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली हैं। एक बार वे जयपुर गए। राजा नवविवाहिता रानी के प्रेम में मत्त हो राजकाज छोड़ बैठे थे। कोई उनके पास फटक नहीं पाता था। बिहारी ने एक दोहा लिखकर भेजा-यह अत्यंत प्रसिद्ध है-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल
अली कलीहि सों बँध्यो आगे कौन हवाल ।

जहाँ, प्रार्थना, नीति, उपदेश काम नहीं कर सका वहाँ बिहारी की कविता ने अपना जादू दिखाया।

बिहारी कविता का जादू फैलाते गए। उनकी ''बिहारी सतसई'' सात सौ । से अधिक दोहों की एक छोटी रचना है। पर इसी के बल पर बिहारी को ''महाकवि'' का सम्मान मिल गया।

दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधानागरि सोइ।
जा तनकी झाई पर, स्यामु, हरित-दुति होइ ।। १ ।।

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग त्यौं त्यों उज्जलु, होइ ।। २ ।।

सीस-मुकुट, कटि काछनी, कर-मुरली उर-माल।
इहि बानक मो मन बसौ सदा बिहारी लाल ।। ३ ।।

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होत प्रयागु ।। ४ ।।

हरि-छबि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरै न ।
भरत, ढरत, बूड़त, तरत, रहत धरी लौं नैन ।। ५ ।।

दृग उरझत टूटत कुटुंब, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियें, दई, नई यह रीति ।। ६ ।।

कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु हीं सब बात ।। ७ ।।

आडे दै आले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहस, कैकै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति ।। ८ ।।

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इंद्र धनुष रंग होति ।। ९ ।।

बतरस लालच लाल की, मुरली धरि लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हसै, दैन कहै नटिजाइ ।। १० ।।

कनक कनक तैं सौगुनि, मादकता अधिकाय।
या पाय बौराए जग, वा खाय बौराय ।। ११ ।।

कहलाने एकत बसत अहि, मयूर मृग, बाघ।
जगतु तपोवन सो कियौ दीरघ-दाघ निदाघ ।। १२ ।।

कर लै, चूमि चढ़ाई सिर, उर लगाइ, भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ।। १३।।

इन दुखिया अँखियान कौ सुख सिरज्योई नाहिं।
देखैं बने न देखतै, अनदेखैं अकुलाँहिं ।। १४ ।।

सघन कुंज-छाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर।
मनु है जात अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ।। १५ ।।

दोहों के शब्दार्थ और भावार्थ :

१- वे राधा (जो नगरी अर्थात् सयानी समझदार हैं), जिनके शरीर की परछाई (झाईं) अर्थात् आभा पड़ने पर श्याम (कृष्ण या काला) रंगवाले कृष्ण हरे रंग की द्युति वाले (बहुत ही

प्रसन्न) हो जाते हैं- वे मेरी भवबाधा (सांसारिक दुःख) को दूर कर दें। यहाँ कवि अपने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए प्रार्थना कर रहा है। बिहारी निम्बार्क संप्रदाय के शिष्य थे, जहाँ राधा-श्याम की उपासना है।

२- 'अनुरागी चित्त'' अर्थात् भक्ति या प्रेम में मग्न मन। ऐसे मन की विचित्रगति और परिणति होती है। मन जितना अधिक ''श्याम'' अर्थात् कृष्ण के ''रंग'' याने प्रेम- भक्ति में मग्न हो जाता है, उतना ही पवित्र (श्वेत और उज्जवल) हो जाता है। अनुराग या प्रेम का रंग लाल माना जाता है। कवि कहता है अनुरागी मन श्याम रंग अर्थात् काले रंग में डूब कर सफेद, स्वच्छ, पवित्र हो उठता है। आनन्दित और मुग्ध होता है। विरोधाभास अलंकार है।

३- यहाँ श्रीकृष्ण की वेशभूषा का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण के सिर (सीस) पर मुकुट है, कटि या कमर पर पीत वस्त्र का परिधान (काछनी) है। हाथ में मुरली है। उर या छाती में वनमाला झूल रही है। बिहारीलाल विनती करते हैं कि हे बिहारीलाल (बाँके बिहारी श्रीकृष्ण) आपका यह बानक या सुंदर मनोहर रूप, मेरे मन में सर्वदा बैठा रहे।

४- कवि कहता है कि तीर्थ स्थानों में जाना छोड़ दो। कृष्ण-राधा के शरीर की आभा (श्याम और गौर वर्ण) का मन में ध्यान करो, उससे प्रेम करों। (प्रयाग में गंगा गौर और यमुना का रंग काला होता है।) वैसे ब्रजभूमि के स्थान-स्थान पर, केलि-कुंजों में, वहाँ की भूमि के पग-पग पर राधाकृष्ण के विहार

करने के कारण प्रयाग तीर्थ बने हुए हैं। अत्यंत पवित्र स्थल हैं। उन्ही में मन लगाओ।

५- यहाँ नयन (नैन) की दशा का वर्णन है। जब से वह हरि (कृष्ण) की छबि (सौंदर्य) जल (द्युति) में गिर गया है, लग गया है तभी से छिनु (एक क्षण) के लिए भी नहीं बिछुरता अलग नहीं होता -लगा रहता है। आँखें प्रेम भक्ति से लोतक पूर्ण (भरती) हैं, आँसू छलक जाते हैं। कृष्ण के शोभाजल में डूबती, तैरती रहती हैं।

६- इस दोहे में प्रेम मार्ग की दिक्कतों का वर्णन है। नायक-नायिका के बीच प्रेम व्यापार का आरंभ दोनों की आँखों के उलझने से शुरू होता है। आँखें चार होती हैं, प्रेम जागृत होता है तो कुटुम्ब से रिश्ता टूट जाता है। चतुर नायक से प्रेम जोड़ देता है। लेकिन दुर्जन लोग इसे सहन नहीं कर पाते। उनकी छाती में ईर्ष्या की जलन (गाँठ) पड़ जाती है। यह विचित्र परिस्थिति है। हा दैव (दई) यह रीति (मार्ग) तो (नई) विचित्र है।

७- प्रसंग है कि नायक और नायिका भवन में अन्य लोगें के साथ हैं। वे मुँह खोलकर आपस में बात नहीं कर सकते । फिर भी ऑखों से ही दोनों एक-दूसरे से बात कर लेते हैं (कहत), मना कर देते हैं (नटत), खुश होते हैं (रीझत), नाराज होते हैं (खीझत), मिलते हैं, प्रसन्न होते हैं (खिलत) लाज का

अनुभव करते हैं। यहाँ केवल संचारी भावों के वर्णन से रस का आस्वादन हो रहा है।

८- रीतिकालीन श्रृंगार-वर्णन का एक तरीका है-अतिशयोक्ति अर्थात बढ़ा-चढ़ा कर बखान करना। यहाँ नायिका की विरह-ज्वाला का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। नायिका प्रिय के वियोग से तापित है। उसका उत्ताप इतना अधिक है कि सखियाँ उसके पास जाने से डरती हैं। लेकिन क्या करें ? स्नेहभाव के कारण जाना ही पड़ता है। इसलिए जाड़े की रात में भी गीले वस्त्र पहन कर (उसकी आड़ में) वे साहस करके स्नेह हेतु सखी नायिका के पास (ढिग) जाती हैं।

९- इस दोहे में वर्ण (रंग) की आभा का सुंदर वर्णन है। जब कृष्ण मुरली को अधर (होंठों) पर धारण करते हैं तब उस हरे रंग की बाँसुरी पर होंठ की लाली, आँख (डीठि) की नीलिमा, वस्त्र (पट) का पीलापन आदि आभाएँ (ज्यति) पड़ती हैं तो वह इन्द्रधनुष जैसे चमकदार दिखाई पड़ती है।

१०-नायिका (राधा) ने बात के रस के लोभ (लालच) से कृष्ण की मुरली को लेकर (धरि) छिपा दिया है (लुकाई)। कभी सौंह या कटाक्ष करके (देती हूँ) स्वीकृति जनताती है तो भौंहों को टेढी करके हँस देती है। ऐसे कभी देने को कहती है (दैन कहैं) और फिर नटि जाती है यानी मना कर देती है, नहीं देती है। चाहती है कि कृष्ण पास रहें बातचीत करें।

११-कनक के दो अर्थ हैं- सोना और धतूरा। कवि कहता है सोना पाने से मनुष्य धन गर्व से पागल (बौराय) हो जाता है, वैसे ही धतूरा खाने से आदमी बौरा जाता है। यमक अलंकार है।

१२-कहने को तो एक साथ जंगल में साँप और मयूर तथा मृग और बाघ, अर्थात् वैर वाले प्राणी रह रहे हैं। कारण यह कि भायानक गर्मी (लंबी - क्रूर - ग्रीष्म) के कारण किसी प्राणी को चैन नहीं है, वे बेबस पड़े हैं। इसलिए जगत तपोवन (जहाँ सब प्राणी वैर भाव छोड़ कर रहते हैं) हो गया है।

१३-इस दोहे में प्रेम-पत्र के महत्व और उपयोगिता का सुंदर वर्णन है। पत्र आया तो नायिका ने उसे आदरपूर्वक कर (हाथ) में लिया, उसे चूमा, फिर उसे सिर पर लगाया (सम्मान किया), फिर उसे छाती से लगाया (विरह-ज्वाला को मिटाया), बाहों में भर लिया। उसे देखती रही, पढने लगी फिर अपनी अमूल्य संपत्ति मानकर समेट-सहेजकर रखा।

१४-आँखों की दीन-दशा का मार्मिक करूणापूर्ण वर्णन है। सचमें, विधाता ने आँखों के भाग्य में सुख ही नहीं लिखा है। प्रिय की रूप-माधुरी को वे देख नहीं पातीं (लजाती हैं), देखे बिना नहीं रहतीं। नहीं देख पाने से (विरह के) आकुल (अकुलाहि) हो उठती हैं।

१५-वृन्दावन की प्रकृति कितनी सुखद थी। कृष्ण के मन में उसकी सुख-स्मृति जागृत हो रही है। यमुना का सुन्दर

किनारा, घने कुंजों की छाया जो अत्यंत सुखकर थी, शीतल, सुगंधित, धीर हवा के झोंके-यहाँ कहाँ, मन उसको ललचाता है। प्रेम की स्मृति सर्वदा जाग्रत है।

बिहारी की काव्यात्मकता

बिहारी रीतियुग के सर्वाधिक लेकप्रिय कवि हैं। बिहारी केवल ''दोहा'' जैसे अत्यंत छोटे छन्द में पूरे प्रसंग का निष्पादन कर देते हैं। सूक्ष्म अनुभूति, भाव-निरुपण में वे अद्वितीय हैं। संयमित और चमत्कारपूर्ण शब्द-संयोजन में भी अतुलनीय हैं। इसीलिए कहते हैं कि बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है।'' यह भी प्रसिद्ध है ''नावक के तीर'' की भाँति उनके दोहे बड़े मर्मस्पर्शी हैं। बिहारी की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-'' मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह तो बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा, इसमें कोई संदेह नहीं। मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भुला हुआ पाठक मग्न हो जाता है। इसमें तो रस के छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसीलिए सभा-समाज के लिए वह अधिक उपयुक्त होता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित संपूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध-सा हो जाता

है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा-सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यंत संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है। अतः जिस कवि में कल्पना की समाहार- शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा, यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से विद्यमान थी। इसी से वे दोहे ऐसे छोटे छन्द में इतना रस भर सके।''

संक्षेप में बिहारी की ये विशेषताएँ हैं-

बिहारी के प्रत्येक दोहे का प्रसंग स्वतंत्र है। एक दोहे का दूसरे से कोई संपर्क नहीं है। यह मुक्तक काव्य है। इसलिए प्रत्येक दोहे का विषय भी अपने आप में पूर्ण होता है। अधिकांश दोहे श्रृगार-वर्णन करते हैं। नीति तथा भक्ति पर भी कुछ दोहे लिखे गए हैं।

इसी से प्रत्येक दोहे में अनुभूति, भाव-संवेदन तीव्र होता है संक्षिप्त वर्णन होने के कारण शब्दों में अर्थ का गांभीर्य होता है। शैली लाक्षणिक होती है- अर्थात् शब्द का सीधे अर्थ के अलावा लक्षणा तथा व्यंजना शब्दशक्तियों का ज्यादा उपयोग होता है। सचमें बिहारी का वाग्वैदग्ध्य (वाणी की अभिव्यंजना शक्ति की परिपक्वता) अनुपम है। भाव कविता में प्रधान होता है, पर व्यक्त करने की शैली भी उत्तम होनी चाहिए। बिहारी की रचना में दोनों बराबर हैं। इसीलिए उनकी कविता सर्वाधिक लोकप्रिय है। उनकी कविता अत्यंत प्रभावशाली है।

बिहारी दरबारी कवि थे। श्रृंगार उनका मुख्य विषय है। नीति, भक्ति, आदि के दोहे भी-मिल जाते हैं। उनको दरबार में पढ़े हर दोहे के लिए एक अशर्फी मिलती थी। राजा लोग श्रृंगारिक कविता सुनना पसंद करते थे।

बिहारी नारी के रूप - सौंदर्य वर्णन में पारंगम थे। नर-नारी के जीवन में आनेवाले मनोभावों के, प्रेम-व्यापारों के चित्रवत् वर्णन करते थे। वे संस्कृत, प्राकृत के साथ उर्दू-फारसी के अच्छे विद्वान थे। जनभाषा हिंदी के पारखी थे। इसलिए उनकी भाषा विषयानुकूल थी और भावाभिव्यक्ति में सक्षम। कवि को बहुत ज्ञानी होना चाहिए, बिहारी वैसे थे। उनमें चमत्कार प्रदर्शन कम, रसात्मक संप्रेषण अधिक है। ऐसे कवि दुर्लभ होते हैं।

प्रश्न और अभ्यास

दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्नः

१. सतगुरु ने एक प्रसंग (बात) कहा, तो क्या हुआ ?

२. जिसके शरीर में प्रीति (ईश्वर प्रेम) नहीं है उनके बारे में कबीर की क्या राय है?

३. जीवन में सार क्या है ?

४. कुंभ फूट गया तो जल जल में मिल गया-इसका क्या अर्थ है ?

५. इस संसार में बुरा कौन है ?

६. 'हरि' और 'मैं' का क्या संबंध है ?

७. पोथी का क्या अर्थ है ?

८. सुख में सुमिरन करो तो क्या लाभ होगा ?

९. 'अविगत गति' का क्या मतलब है ?

१०. गूँगा मीठे फल का रस कैसे अनुभव करता है ?

११. किससे 'अमित तोष' उपजता है ?

१२. निरालंब का ध्यान करना असंभव क्यों है ?

१३. जहाज के पंछी की क्या मजबूरी है ?

१४. 'महात्मा' क्या करता है?

१५. जिस भौंरे ने कमल का रस पिया, वह क्या नहीं करता ?

१६. 'कामधेनु' और 'छेरी' किस किसके प्रतीक हैं?

१७. 'समदरशी' प्रभु क्या करते हैं ?

१८. नदी के साथ नाला मिल जाय तो क्या होता है ?

१९. लोहा कितने तरह के हैं ?

२०. पारस क्या नहीं जानता ?

२१. 'कंचन करत खरौ' का क्या तात्पर्य है ?

२२. सब एक हैं परंतु दो समझकर क्या-क्या नाम दिया गया है?

२३. यशोदा श्याम को क्या चेतावनी देती है ?

२४. गोपी और ग्वाल कृष्ण को चलते देख क्या करते हैं ?

२५. कान्हा अपना प्रतिबिम्ब मणि-खंभों में देख क्या करते हैं ?

२६. यशोदा मैया कान्हा को क्या सिखाती हैं ?

२७. 'अरबराइ' का अर्थ बताइए ?

२८. माँ यशोदा कुल देवता के लिए क्या मिन्नत करती हैं ?

२९. नन्दसुत को सूरदास प्रतापशाली क्यों कहते हैं ?

३०. मीराबाई नन्दलाल से क्या अनुरोध करती हैं?

३१. मीरा अपने नैनों को विशाल कैसे बनाती हैं ?

३२. 'अधर सुधारस मुरली राजति' का भाव स्पष्ट कीजिए ?

३३. मीरा अपना पति किसे मानती हैं?

३४. मीरा 'कुल कानि' क्यों छोड़ देना चाहती हैं?

३५. 'लोकलाज खोई' का क्या मतलब है ?

३६. 'प्रेम की बेलि' को कैसे बढ़ाया गया ?

३७. 'भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई' का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

३८. मीरा ने गोविन्द को मोल लिया, कैसे ?

३९. 'तराजू तोल' कैसे किया ?

४०. विष का प्याला राणाजी ने किसके लिए और क्यों भेजा ?

४१. मीरा को गिरिधर नागर सहज ही मिल गए, यह कैसे ?

४२. मीरा ने पग में घूँघरू बाँध कर क्यों नाचा ?

४३. राधा के तन की द्युति पड़ने से क्या होता है ?

४४. स्याम रंग में बूड़ने से उज्जवल कैसे होता है ?

४५. कुंज का पग पग प्रयाग बन गया है, कैसे ?

४६. हरि का छबि-जल नैन पर पड़ने से उसकी क्या दशा हुई?

४७. 'दृग उरझात' की परिणति क्या होती है ?

४८. 'नैननु हीं सब बात' कैसे होती है ?

४९. 'बतरस के लालच' से राधा ने क्या किया ?

५०. 'दाघ निदाघ' में क्या हुआ ?

५१. 'पिय की पाती' को पाकर नायिका ने क्या किया ?

५२. कृष्ण का मन आज भी यमुना के तीर क्यों जाता है ?

लघूत्तरी प्रश्नः

उत्तर चार-पाँच वाक्यों में होना चाहिए। प्रत्येक प्रश्न के लिए २ अंक हैं।

नमूना प्रश्न- गुरु और गोविन्द के संबंध कबीर के क्या विचार हैं?

उत्तर- कबीर कहते हैं कि गुरु और गोविन्द आकार में दो होने पर भी वास्तव में एक ही तत्व हैं। अर्थात गुरु ही ईश्वर हैं। क्योंकि ईश्वर को गुरु ही जानते हैं, वे उन्हें दिखा देते हैं। जब शिष्य का अहंकार मिट जाता है तब वह ईश्वर का दर्शन पा सकता है।

निम्नलिखित प्रश्नों के ऐसे उत्तर लिखकर अभ्यास कीजिएः

१. चकई और नर की विरह-दशा का अंतर स्पष्ट कीजिए।

२. मृग का वन-वन घूमना- इस सामान्य बात से कौन-सी तात्विक बात कही गई है ?

३. काम में ढिलाई करने से क्या परिणाम होता है ?

४. मनुष्य का जन्म दुर्लभ है, इस सत्य का अनुभव कैसे होता है ?

५. माला फेरने की जरूरत है अथवा नहीं है ?

६. ईश्वर की प्राप्ति में बाधक क्या है ?

७. पोथी न पढ़कर भी पंडित हुआ जा सकता है, कैसे ? समझाइए।

८. सूरदास सगुन-पद गाने का निश्चय क्यों करते हैं ?

९. अव्यक्त-गति वाले ब्रह्म का ध्यान क्यों नहीं किया जा सकता है ?

१०. जैसे जहाज का पंछी वापस जहाज में ही आता है, वैसे और कौन है ?

११. कमलनैन कृष्ण को छोड़ दूसरे देवता का ध्यान करना कैसी मूर्खता है ?

१२. सूरदास प्रभु से अपना अवगुण या दोष न धरने को किस आधार पर कहते हैं ?

१३. 'अबकी बार मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो' का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

१४. सूरदास के बाललीला-वर्णन की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?

१५. यशोमती की मानसिक दशा का वर्णन कीजिए ?

१६. मीरा बाई नंदलाल को नयनों में बिठाना क्यों चाहती हैं ?

१७. मीरा की एकमात्र गति गिरिधर गोपाल हैं-प्रमाणित कीजिए?

१८. कान्हा 'अमोलिक मोल' हैं, समझाइए ?

१९. अनुरागासक्त चित्त की गति कैसी होती है ?

२०. बिहारीलाल की कौन-सी छबि कवि अपने मन में बिठाये रखना चाहता है ?

२१. हरि की छबि देखन के बाद नयन की क्या गति होती है?

२२. जाड़े की रात में सखियाँ विरहिणी के पास कैसे जाती हैं?

२३. आँखें सर्वदा दुःखी ही हैं, क्यों ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न के नमूने :

नीचे दिए गए प्रश्नों के चार - चार विकल्प दिए गए हैं। उनमें से सही विकल्प चुनिए:

१. कबीर को अच्छे गुरु मिल गए तो क्या हुआ ?

(क) मजा आ गया (ख) आटे में लोन मिल गया

(ग) सत्संग होने लगा (ग) जाति पाँति समझी गई

२. चकवी रात को बिछुड़ती है तो सुबह मिलती है, लेकिन जो रामसे बिछुड़ते हैं, उनका क्या होता है ?

(क) वे सर्वदा सुखी हैं (ख) उन्हें सर्वदा दुख होता हैं

(ग) वे कभी नहीं मिलते (घ) वे संसार से मिलते हैं

३. कल करने वाले काम को आज ही कर लेना चाहिए। क्योंकि

(क) कल समय नहीं मिलेगा (ख) पता नहीं कब क्या हो जाय

(ग) पल में प्रलय होगा (घ) बहुरि कब करेगा

४. कमलनैन वासुदेव को छोड़ क्या करना बड़ी मूर्खता है ?

(क) गिरिवर धारण (ख) अंबुज-रस सेवन

(ग) दूसरे देवताओं का पूजन (घ) गंगाजल पान

५. यशोदा मैया कान्हा को क्या सिखाती है ?

(क) चलना (ख) माखन खाना

(ग) गाँव की गली में खेलना (घ) गाय चराना

६. लोग मीरा को 'कुलनासी' कहते थे क्योंकि -

(क) उनकी कोई संतान न थी

(ख) वे राजकुल छोड़ मंदिर में नाचती - गाती थीं

(ग) कुल को जला दिया था (घ) वे विधवा थीं

७. 'नैना बने बिसाल' का क्या मतलब है?

(क) बड़ी बड़ी आँखें होना (ख) आँखों में रोग होना

(ग) आँखों का सही उपयोग होना (घ) मोहनी सूरत देखना

८. राधा कृष्ण की मुरली क्यों छिपा देती है?

(क) बात करने के लोभ से (ख) खुद बजा इच्छा से

(ग) मजाक करने के लिए (घ) भौंहों से हँसने के लिए

अपेक्षित उत्तर:

(1) ख, (2) ग, (3) ग, (4) ग, (5) क, (6) ख, (7) ग, (8) क।

विशेष: ऐसे अन्य प्रश्न बनाकर उत्तर चुनने का अभ्यास करें।

प्रश्न और अभ्यास

अति लघूत्तरी प्रश्नः

प्रत्येक प्रश्न का मूल्य २ अंक है। एक या दो वाक्यों में उत्तर दें।

१. क्या करने पर हरि के दर्शन मिलते हैं ?

(पहले अहंकार छोड़ देना पड़ता है। फिर हरि का भजन करने से उनके दर्शन मिलते हैं।)

२. चकवी और नर के विच्छेद में क्या अंतर है ?

(चकवी रात तो चकवे से बिछुड़ (अलग) जाती है, लेकिन प्रभात में मिल जाती है। लेकिन जो नर राम (ईश्वर) से विछुड़ जाते हैं, वे तो दिन-रात कष्ट पाते रहते हैं।)

३. 'घट में पीव है' का क्या मतलब है ?

जैसे कस्तुरी मृग की नाभि में होती है, वैसे ही प्राणी के शरीर (घट) के भीतर ईश्वर (पीव) है।

४. कल का काम आज क्यों कर लेना चाहिए ?

क्योंकि यह संसार अनित्य है। कब क्या हो जाए नहीं कहा जा सकता।

५. माला फेरने से ही ईश्वर का स्मरण नहीं होता, क्यों ?

माला तो हाथ में फिरती रहती है, लेकिन मन की स्थिरता नहीं होती। मन इधर-उधर चक्कर काटता है। सच्चे और स्थिर मन से ईश्वर का स्मरण करना चाहिए।

निर्देशः

ऐसे प्रश्न खुद बनाइए और उत्तर लेखकर अभ्यास की जिए।

जयशंकर प्रसाद

छायावाद के अग्रदूत जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३६) का जन्म बनारस के प्रसिद्ध तम्बाकू व्यापारी सूंघनी साहु परिवार में हुआ। पिता देवीप्रसाद व्यवसायी थे और काव्य-कला के प्रेमी भी। परंतु जब जयशंकर सिर्फ तेरह साल के थे पिता की मृत्यु हो गई। परिवार का बोझ किशोर जयशंकर पर पड़ा। पढ़ाई छूट गई, व्यवसाय चलाना पड़ा, मगर मन ज्ञान-चर्चा में, साहित्य-साधना में लगा रहा। पिता से मिले संस्कार और अपनी प्रचेष्टा से जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व सुशिक्षित, भव्य और परिष्कृत हो गया। प्रसाद मानव-जीवन, प्रकृति और नारी के सौंदर्य के सफल और अद्वितीय कवि हैं।

कविता- रचना ब्रजभाषा में शुरु हुई, मगर जल्दी ही खड़ीबोली के क्षेत्र में आ गए। आरंभिक कविताओं में ही जीवन के प्रति असीम प्रेम, मस्ती और आनन्द के भाव मिलते हैं। 'झरना' और 'पल्लव' में प्राकृतिक सौंदर्य का संभार है। यहाँ मनुष्य और प्रकृति अंतर और बाहर से घनिष्ठ भाव से मेलजोल में हैं। 'लहर' में प्रौढ़ चिंतन है। 'आँसू' विरह काव्य है, इसके मानवीय भावों, नारी-सौंदर्य, प्रकृति का समन्वित मानवी रूप ने तत्कालीन युवामानस को मंत्रमुग्ध कर लिया। 'कामायनी' महाकाव्य है। हिंदी की अनमोल रचना है। जीवन में गुण-दोष, सुख-दु:ख, भोग-त्याग, भौतिकता-आध्यात्मिकता संघर्ष दिखाकर 'कामायनी' तापित मनुष्य को समरसता की भूमि कैलाश पर ले जाती है। इसमें भारतीय दर्शन और काव्यत्मकता का समन्वय पाया जाता है। सूक्ष्म भावों का सजीव चित्रण प्रसाद की विशेषता है। वे जागरण के कवि-माने जाते हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद ने अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखकर मानवीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, चिंतन और समृद्ध जीवन का रसात्मक संस्करण प्रस्तुत किया है। 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जन्मेजय का नामयज्ञ आदि अनेक नाटक है। 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी जैसे अमर नाटकों के चरित्र और जीवन-कथा मार्मिक हैं ।

उपन्यास तीन हैं - तितली, कंकाल और इरावती (असंपूर्ण)। 'कंकाल' में जयशंकर प्रसाद का कोमल कवि मन कठोर यथार्थ-जीवन में उतर पड़ा है।

कहानियाँ जीवन के विविध मानवीय मूल्यबोधों को उद्घाटित करती हैं। मधूलिका, चंपा, ममता, देवसेना, विजया, कल्याणी जैसी नारियाँ मानवीय - मूल्यों अथवा दुर्बलताओं को उद्घाटित करके हमारी अत्यंत प्रिय बन जाती हैं।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में छायावादी कविता का वैभव आदर्श पूर्णता के साथ मिलता है। संस्कृत निर्मित भाषा-शैली, आदर्श विचार, रसात्मकता, जीवन-प्रेम, चित्रात्मक दर्शन-क्षमता, प्रतीक विधान, लाक्षणिकता - आदि अनेक विशेषताएँ मिलकर उनके साहित्य को अद्भुत भव्यता और गौरव प्रदान करती हैं। प्रसाद तो प्रसाद ही हैं, अतुलनीय, अप्रतिम हैं।

प्रसाद का रचना-संसार :

काव्य - कानन कुसुम, महाराणा का महत्व, चित्राधार, प्रेमपथिक, झरना, आँसू, लहर, कामायनी।

नाटक - राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जन्मेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कंदगुप्त, एक घूँट, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास - कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)

कहानी संग्रह - काव्य, कला तथा अन्य निबंध।

ले चल वहाँ

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक! धीरे धीरे!
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी....
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।
जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढो ले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे
जिस गम्भीर मधुर छाया में...
विश्व-चित्र-पट चल माया में...
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।
श्रम-विश्राम क्षितिज-बेला से...
जहाँ सृजन करते मेला से...
अमर जागरण उषा-नयन से...
बिखराती हो ज्योति घनी रे...।

शब्दार्थ :

भुलावा देकर = बहला फुसला कर, समझा-बुझाकर; नाविक = नावचालक कर्णधार; निर्जन = जहाँ भीड़ नहीं है; अम्बर = आकाश; निश्छल = बिना किसी कपट या दुराव के, अवनी = पृथ्वी, संसार; ढोना = उठाना; घनी = काफी संख्या में; मधुर छाया = मोहक सुखकर स्थान, विभुता = ज्योतिर्मय वैभव; श्रम-विश्राम = मेहनत और आराम; क्षितिज-बेला = दिगंत व्यापी समुद्रतट।

भावार्थ :

इस कविता में अर्थ के दो स्तर हैं - एक लौकिक जीवन का सुख और दूसरा अलौकिक आनन्द का। कवि अपने सांसारिक जीवन के झमेलों से, जग-जंजाल से ऊब गया है। वह दु:खी है। इससे छुटकारा पाना चाहता है। वह कहीं और चलना चाहता है, दूसरे स्थान में, सुखदायी जगह में। नाविक अर्थात् संचालक, मार्गदर्शक, ईश्वर (निहितार्थ में) कवि के लिए यह सुबुद्धि या विवेक का प्रतीक है। वह विवेक से आग्रह करता है कि चलो कोई बहाना लेकर इस संघर्ष पूर्ण अशांत जीवन से मुझे निकालकर किसी सुखकर स्थान में ले चलो। मैं इस सांसारिक सुख-दु:ख में इतना व्यस्त हूँ कि छोड़ नहीं पाता हूँ। इसलिए नाविक अपनी नाव से मुझे किसी दूसरी जगह ले चलो। ऐसी जगह हो जहाँ दुनिया का शोरगुल नहीं है। निर्जन स्थान हो। समुंदर का किनारा हो। जहाँ सागर की लहरी उछल-उछल कर आसमान से प्यार भरी बातें करती हो। (पुरी के समुद्र किनारे बैठकर यह कविता लिखी गई थी)। इसलिए नाविक अपनी नाव में मुझे किसी दूसरी जगह ले चलो। यह अनुरोध दु:ख भरे, अशांत

जीवन से पलायन नहीं है, अपितु कुछ समय के लिए पिकनिक में जाना है। फिर नई ऊर्जा लेकर वापस आना है। नया अमर्त्य, प्रकाशमय जीवन पाना है।

उस स्थान पर संध्या का शांत वातावरण हो, जहाँ जीवन के सारे झंझटों को साँझ समाप्त करती है और अपने कोमल-शरीर से सारे बोझ को ढोकर कहीं ले जाती एवं जीवन-यात्रा को सुख की मंजिल तक पहुँचाती है, विश्रांति प्रदान करती है। अपने सुंदर नील नयनों से संध्या मानो ताराओं की पंक्ति द्वारा जीवन को आनन्द और प्रकाश से उद्‌भासित कर देती है।

संध्याकाल के उस मनोरम परिवेश में ईश्वर की सृष्टि की महानता देख उसकी याद आती है। इधर चंचल विश्व का मोहक दृश्य, जो माया की तरह आकर्षक है, जिसमें ईश्वर (विभु) की विभुता (सृजन शक्ति = सारी सृष्टि के रूप में फैली हुई है ईश्वर की शक्ति के कारण) दु:ख-सुख आदि के साथ सत्य वस्तु के रुप में दिखाई पड़ती है। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, चंचल है, अनित्य है, परईश्वर की शक्ति माया की करतूत से यह जगत् सत्य - सा लगता है। उस अपेक्षित स्थान में मेहनत और आराम एक मेला या उत्सव जैसा परिवेश बनाते हैं। जहाँ आगे आनेवाले प्रात: काल में (नई जीवन-यात्रा में) प्रकाश (ज्योति) फैला रहा है। वह ज्योति जीवन से अज्ञानता और अशांति को दूर कर अमरत्व, आनन्द देती है और ज्ञान से उद्‌भासित करती है।

जिस गंभीर ..... बनी रे।

लेखक नाविक को उस जगह ले जाने को कहता है जहाँ मधुर छाया हो अर्थात् अत्यंत सुखकर स्थान हो। वहाँ से विश्व-चित्र-पट की

चंचल माया अर्थात् सृष्टि के सुंदर परिवर्तनशील दृश्य जो अत्यंत आकर्षक हैं, को अच्छी तरह देख सकेगा। साधारण अर्थ में यह संसार के आकर्षक सुंदर दृश्य हैं, जहाँ जादूगर के जादू की तरह असत्य को भी सत्य बनाकर दिखाया जाता है। दर्शन में संसार को माया यानी आकर्षक और मिथ्या कहा गया है। लेकिन इस मायामय दृश्यों में ईश्वर की शक्ति का कितना सुंदर और मोहक प्रतिफलन है! शक्ति के सुंदर प्रदर्शन द्वारा शक्तिशाली की पहचान होती है। ब्रह्म सत्य है, जगत् या संसार मिथ्या है। किंतु ब्रह्म की शक्ति से निर्मित असत्य दु:ख-सुख का संसार सत्य-सा प्रतीत होता है। बड़ा आकर्षक दिखाई देता है।

प्रश्नोत्तर अभ्यास :

१. निम्नलिखित प्रश्नों से सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए :

(i) नाविक का विशेष अर्थ है -

(क) नाव चलानेवाला (ख) मार्गदर्शक

(ग) जीवन साथी (घ) नेता

२. एक/दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :

(i) कवि कहाँ जाना चाहता है?

(ii) कवि क्यों कोलाहलमय जीवन को छोड़ना चाहता है?

(iii) कवि ने संध्या की क्या-क्या विशेषताएँ बताई हैं?

३. इन प्रश्नों के उत्तर चार-पाँच वाक्यों में दीजिए :

(i) कवि कहाँ और क्यों जाना चाहता है?

(ii) 'नील गगन में ढुलकाती हो ताराओं की पाँत घनीरे' का अर्थ समझाइए।

(iii) विभु की विभुता - सी छटाएँ कैसे दिखाई देती हैं?

४. निम्न प्रश्नों के उत्तर दस-बारह वाक्यों में दीजिए :

(i) कवि हमें क्या संदेश देता है? और क्यों?

(ii) कविता का सार मर्म लिखिए।

(iii) उषा अपने नयनों से घनी ज्योति बिखराती है तो क्या होता है?

सुमित्रानंदन पंत

हिन्दी का छायावाद युग (१९१८-१९३६) कविता का उत्कर्ष काल है। इसके चार गायकों ने चार मुख्य स्वरों को मुखरित किया है। प्रसाद ने सौंदर्य, निराला ने पौरुष, पंत ने प्रकृति और महादेवी ने करुणा को वाणी दी है। इसके कारण उनके जीवन की परिस्थितियों में निहित हैं।

सुमित्रानंदन पंत (१९००-१९७७) का जन्म हिमालय के सुंदर पार्वत्य-प्रदेश कुमायूँ की गोद में कोसानी नामक गाँव में हुआ। माता चल बसीं तो दादी ने पाला पोसा। मनोरम प्रकृति के आंगन अल्मोड़ा में शिक्षा प्राप्त की। इलाहाबाद के प्रख्यात सेंट्रल म्योर कॉलेज में (१९१९-२१) पढ़ रहे थे, लेकिन महात्मा गाँधी के आह्वान से कॉलेज छोड़ा। स्वतंत्रता संग्राम के पक्षधर साहित्य साधना में डटे-रहे। स्वाध्याय किया। इलाहाबाद में १९५० में आकाशवाणी में कार्य किया।

शुरु किया सुकुमार कल्पना के साथ, प्रगतिशील यथार्थवादी हो कर जन-जीवन का विषय उठाया और अंत में अरविन्द दर्शन में डूब गए। इस प्रकार वे कविता को नई-नई भावभूमियों पर ले गए। 'उच्छ्वास', 'ग्रंथि', वीणा, पल्लव और 'गुंजन' में प्रकृति के सुकुमार सौंदर्य के चित्र मिलते हैं। यहाँ कवि प्रकृति की सुंदरता से इतना आकृष्ट है कि नारी-सौंदर्य को भी अस्वीकार करता है। पंतजी की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं - 'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया, बाले! तेरे बालजाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।' फिर 'ज्योत्स्ना', 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' आदि में कवि भारत के जन-जीवन को देखता है। कोमल कल्पनाएँ, सहानुभूति और समवेदना, दु:खी जीवन से व्याकुलता इन कविताओं में स्पष्ट है। इसमें योगी अरविन्द के चिंतन की छाया स्पष्ट है।

'उत्तरा', काला और बूढ़ा चाँद, 'युगपथ', 'चिदम्बरा', 'रश्मिबंध' में युग-चेतना की झाँकियाँ मिलती हैं। 'लोकायतन' महाकाव्य है, जिसमें भारत माता के सांस्कृतिक जीवन के बदलते रूप के साथ लोकतांत्रिक चेतना पर बल है।

शांतिप्रिय द्विवेदी के अनुसार पंत 'मनोरम कल्पना' के कवि हैं। अन्य विद्वानों के विचार से पंत कोमल भावनाओं के चित्रकार हैं। नामवर सिंह पंतजी को निपुण शब्द-शिल्पी मानते हैं। स्वयं कवि अपनी कविता के बारे में कहता है - 'मेरा काव्य युग के महान संघर्ष का काव्य है।' सच में, पंतजी की 'वीणा' के गीत आज के तुमुल कोलाहल में वीणा की झंकार जैसे सुनायी देते हैं।

भारत माता

भारतमाता
ग्राम वासिनी!
खेतों में फैला दृग श्यामल
शस्य भरा जनजीवन आँचल
गंगा यमुना में शुचि श्रम जल
शील मूर्ति
सुख दुख उदासिनी!

स्वप्न मौन, प्रभु-पद-नत-चितवन
ओठों पर हँसते दुख के क्षण,
संयम तप का धरती-सा मन,
स्वर्ग-कला
भू पथ प्रवासिनी!

तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन,
अन्न वस्त्र पीड़ित, अनपढ़ जन,
झाड़ फूँस खर के घर आँगन,
प्रणत शीश
तरुतल निवासिनी!

विश्व प्रगति से निपट अपरिचित
अर्ध सभ्य, जीवन रुचि संस्कृत,
रूढ़ि रीतियों से गति कुंठित,
राहु-ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी!

सदियों का खँडहर, निष्क्रिय मन
लक्ष्य हीन, जर्जर जन जीवन,
कैसे हो भू-रचना नूतन,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

पंचशील रत, विश्व शांति व्रत,
युग युग से गृह आँगन श्रीहत
कब होंगे जन उद्यत जाग्रत?
सोच मग्न
जीवन विकासिनी!

उसे चाहिए लौह संगठन
सुन्दर तन, श्रद्धा दीपित मन,
भव जीवन प्रति अथक समर्पण,
लोक कलामयी,
रस विलासिनी!

शब्दार्थ और भावार्थ :

भारत माता = अपना देश भारत, मातृभूमि। ग्रामवासिनी = भारत की अधिकांश जनता गाँवों में रहती है, इसलिए ग्राम्य-जीवन ही भारत का सच्चा रूप है। खेतों में.... आँचल = गाँवों के खेतों में हरीभरी फसल है, वही जनता का आँचल या पहनावा है। दृग = आँखों को यह रूप सुंदर लगता है। गंगा-यमुना आदि नदियाँ पवित्र जल वहन करती हैं, वह जल मानों श्रमिकों के द्वारा बहाए गए पवित्र (क्योंकि दूसरों को वे पोषण करते हैं) श्रमजल = पसीने की धाराएँ हैं। भारत के लोग सुशील होते हैं, वह धरती माता का लक्षण है। लोग यहाँ सुख हो या दु:ख किसीकी परवाह नहीं करते। इसलिए भारतमाता को - 'सुख दु:ख उदासिनी' कहा है।

भारतमाता के अनेक सपने हैं, लोगों के मन में अनेक आशा-आकांक्षाएँ हैं। लेकिन वे कुछ बोलते नहीं, क्योंकि उन्हें पूरा करना आसान नहीं। प्रभु... चितवन, ईश्वर या भगवान के प्रति मन लगा है, सो चितवन = आँखें नीचे की ओर झुकी हैं। ईश्वर के प्रति समर्पण है। आस्तिक लोग हैं। दु:ख में भी हँसकर जीते हैं यहाँ के लोग। मन जैसे संयम और तपस्या में मग्न है। अर्थात् भारत का जीवन-दर्शन सांसारिक सुख दु:ख में मर्माहत न होकर तप, संयम और ईश्वर-भक्ति से गुजारा करता है। भारत मानों

स्वर्ग की एक कला है जो धरती पर उतर आई है। स्वर्ग... प्रवासिनी-स्वर्गीय वस्तु पृथ्वीपर प्रवास के लिए घूमने कुछ दिनों को आई है।

भारतवासियों में से लगभग तीस करोड़ लोग गरीबी में जीते हैं। अन्न और वस्त्र नहीं मिलते। उससे दु:खी हैं। यह कठोर यथार्थ है। लोग अशिक्षित (अनपढ़) हैं। उनके घर भी घासफूस से बना है। खर = एक लंबी घास। वे दूसरों के काम करते है, मजदूरी करते हैं, इसलिए 'प्रणत शीश हैं। सिर उनका झुका रहता हैं। वे वृक्षों की छाया में (अर्थात् बेघर) जिंदगी गुजारते हैं।

भारत के लोग विश्व या संसार में हो रही प्रगति (आर्थिक उन्नति आदि) से अपरिचित हैं। अन्यत्र क्या हो रहा है, नहीं जानते। अर्ध सभ्य - भारत के लोग आधे नग्न हैं, अर्थात् उनमें मानविकता, सभ्यता तो है, लेकिन दीन, हीन, अशिक्षित हैं)। उनकी जीवन की रुचि (प्रवृतियाँ) मार्जित हैं। अर्थात् अपने स्वार्थ के लिए दूसरों से नहीं लड़ते, दंगा-फसाद नहीं करते। उच्च मानवीय मूल्यबोध के प्रति समर्पित हैं। परंपरागत रीति-रिवाजों (रुढ़ियाँ) से, अंधविश्वास से ग्रस्त हैं। जीवन कुंठित, अवदमित हो गया है। ऐसा लगता है मानों शरदिन्दु = शरत् काल के चंद्रमा जैसे भारत माता का मुख राहु ग्रह के द्वारा ग्रसित है। प्रफुल्लित मुख मुरझाया हुआ है।

भारतवर्ष कई सौ वर्ष विदेशी शासन के अधीन रहा। इसलिए दरिद्रता और उत्पीड़न से घर-बार का रख-रखाव भी संभव नहीं, वह खंडहरों में बदल गए हैं। मन (जनता का) काम करने को उत्साहित न होकर निष्क्रिय हो गया है। कैसे इस दुरवस्था से छुटकारा मिलेगा, कैसे नया जीवन बनाया जाएगा - इस संबंध में कोई ज्ञान या विचार या योजना

नहीं हो पा रही है। नए निर्माण के ज्ञान का अभाव है। यद्यपि यह देश 'भगवद् गीता' जैसे ज्ञान-ग्रंथ का प्रणेता रहा है।

भारत की विदेश नीति पंचशील पर आधारित है। विश्वशांति भारत का व्रत है। अर्थात् विश्व में शांति हो, यह चाहता है। लेकिन घर-बार (श्रीहत)=उजड़ गए हैं। भयंकर गरीबी है। कब देशवासी जागेंगे ? काम में लगेंगे ? इस चिंता में डूबे हैं। ये वे लोग हैं जो जीवन में विकास-पथ में चल-रहे थे। सभ्य, समृद्ध थे।

भारत को अब चाहिए - मजबूत संगठन। लोक एक हो । स्वस्थ रहें। उत्साह से मन भर जाय। सांसारिक प्रगति में शामिल हों। संसार के विकास के लिए लग जाएँ। समर्पित हो जाएँ। साधारण जनों के लिए शिल्प, उद्योग धंधे हों। वे कला कौशल से युक्त हों। जीवन के सुख या आनंद में निमग्न हों। ऐसा देश बने।

प्रश्नोत्तर और अभ्यास

१. सही विकल्प चुनिए :

(i) भारतमाता की खास विशेषता क्या है ? यह -

(क) ग्रामवासिनी (ख) भोग विलासिनी

(ग) वीणावादिनी (घ) पदचारिणी

(ii) 'अर्ध-नग्न-जन' कौन है ?

(क) पहाड़ (ख) भारत की जनता

(ग) संन्यासी (घ) भिखारी

२. **एक/दो** वाक्यों में उत्तर दीजिए :

(i) गंगा-यमुना में शुचि-श्रम-जल कैसे बहता है?

(ii) शरदेन्दु राहुग्रस्त कौन है?

(iii) 'तरुतल निवासिनी' किसे कहा गया है?

३. निम्न प्रश्नों के उत्तर **तीन/चार** वाक्यों में दीजिए।

(i) 'स्वर्ग कला भू पथ प्रवासिनी' का अर्थ समझाइए।

(ii) ज्ञानमूढ़ गीता शास्त्र प्रकाशिनी कौन है?

(iii) भारत को क्या चाहिए?

(iv) भारत को कवि किस रूप में देखना चाहता है?

४. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर **दस-बारह वाक्यों** में दीजिए।

(i) भारतमाता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(ii) 'भारतमाता' कविता पढ़कर आपको कैसा लगा, बताइए।

(iii) 'कविता की भाषा अत्यंत मर्मस्पर्शी है' प्रमाणित कीजिए।

(iv) 'सुख दुख उदासिनी' की व्यंजना को स्पष्ट कीजिए।

नागार्जुन

आधुनिक हिंदी साहित्य में नागार्जुन प्रगतिशील रचनाकार हैं, उनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र है। ये प्रगतिवादी विचारधारा के प्रमुख लेखक और कवि हैं। खरापन और अकृत्रिम स्वभाव उनके काव्य की विशेषता है, दलित वर्ग के प्रति उन्होंने संवेदना जताने के साथ-साथ शोषित समाज की दुरवस्था को दिखाया है।

उनका जन्म जून १९११ में दरभंगा, बिहार में हुआ। उनके पिता का नाम श्री गोकुल मिश्र था और वे तैरानी गाँव में रहते थे। नागार्जुन संस्कृत भाषा जानते थे; साथ ही पालि, मैथिली और हिंदी के भी विद्वान थे। वे घुमक्कड़ स्वभाव के थे। किसानों के संघर्ष का उन्होंने नेतृत्व किया, फलस्वरूप जेल में दस महीने की सजा काटी। १९४८ई. में गाँधी-वाद पर लिखी गई कविता जब्त कर ली गई और फिर से जेल भेज दिए गए।

उनकी कव्य सृष्टि का आधार है - जनपदीय संस्कृति और लोकजीवन। उनका प्रारंभिक काव्य संकलन 'युगधारा' है। लोग-चेतना और यथार्थ अनुभव से वे अनुप्राणित थे। उनकी कविता में हास्य-व्यंग्य मौजूद हैं। उनकी काव्य-कृति 'सतरंगे पंखोंवाली' प्रगतिशील कविता का एक बेहतरीन नमूना है।

अपनी भाषा में उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। सहजता उनके काव्य की विशेषता है। जटिल भाव को वह सहज रूप से अभिव्यक्त करते हैं। किसान जीवन की पीड़ा उनकी कविता की मुख्य विषयवस्तु है। नागार्जुन को बिहार सरकार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

और साहित्य अकादेमी दिल्ली द्वारा फेलोशिप सम्मान से सम्मानित किया गया।

नागार्जुन के प्रसिद्ध कविता संग्रह :

युगधारा, सतरंगे पंखोवाली, प्यासी पथराई आँखें, तालाब की मछलियाँ, हजार-हजार बाँहोंवाली आदि हैं।

बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
बहुत दिनों के बाद।
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर सूँघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे-टटके फूल
बहुत दिनों के बाद।
अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जी भर
बहुत दिनों के बाद।

अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-स्पर्श सब साथ साथ इस भूपर
बहुत दिनों के बाद।

प्रस्तुत कविता 'युगधारा' नामक काव्य-संग्रह से ली गई है। एक लंबे अर्से के बाद कवि अपने चिर-परिचित गाँव के इलाके में आता है। वह कहीं दूर रहता है। अपनी मिट्टी में पहुँचकर उसे अनोखी खुशी मिलती है। वह परितोष का अनुभव कर उल्लसित हो उठता है। अपने उल्लास को कवि ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पाँच बिंबों के माध्यम से व्यक्त किया है।

कवि बहुत दिनों के बाद अपने गाँव के खेतों में पीली-पीली सुनहली फसलों को लहलहाते हुए देखता है और उसकी आँखें तृप्त हो जाती हैं।

वहीं धान कूटती किशोरियाँ गाना गा-गाकर धान कूटती हैं। उनकी कोयल जैसी आवाज सुनकर कवि अभिभूत हो उठता है।

प्रकृति की सुंदरता गाँव में देखने को मिलती है। वहाँ मौलसिरी के गुच्छे-गुच्छे ताजे-टटके फूल खिले हुए हैं, जिसकी भीनी-भीनी खुशबू आ रही है। कवि को इस खुशबू ने सराबोर कर दिया और उन्होंने जी भर कर उसे सूँघा।

कवि गाँव की पगडंडी पर बहुत दिनों बाद नंगे पाँव चलकर जा रहा है। गाँव की पगडंडी की चंदनवर्णी धूल बहुत दिनों के बाद उसके पैरों को छू रही हैं। कवि उस धूल के स्पर्श से पुलकित हो रहा है।

अंत में बहुत दिनों के बाद कवि ने जी भर तालमखाना खाया और गन्ने चूसे। गाँव की इन चीजों का लुत्फ उठाया।

पूरी कविता जीवन-जगत् के सौंदर्य में कवि की गहरी दिलचस्पी को व्यक्त करती है।

शब्दार्थ और भावार्थ :

ताजा टटके - एकदम ताजा; कोकिल कंठी तान - कोयल के समान स्वर। चंदनवर्णी - चंदन के रंग वाली

प्रश्नोत्तर और अभ्यास

१. सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए।

(i) नागार्जुन का वास्तव नाम क्या है?

(क) वैद्यनाथ मिश्र (ख) कलराज मिश्र

(ग) राधामाधव मिश्र (घ) कृष्ण मिश्र

(ii) 'बहुत दिनों के बाद' कविता किस कवि द्वारा लिखी गई है?

(क) धूमिल (ख) नागार्जुन

(ग) शमशेर बहादुर सिंह (घ) केदारनाथ सिंह

(iii) नागार्जुन किस धारा के कवि हैं?

(क) छायावाद (ख) हालावाद

(ग) प्रगतिवाद (घ) प्रयोगवाद

(iv) 'बहुत दिनों के बाद' कविता किस काव्य-संग्रह से ली गई है?

(क) युगधारा (ख) प्रेमधारा

(ग) पल्लव (घ) वीणा

(v) कवि नागार्जुन बहुत दिनों के बाद कहाँ पहुँचते हैं?

(क) शहर (ख) गाँव

(ग) नगर (घ) बस्ती

(vi) बहुत दिनों के बाद कवि ने क्या खाया?

(क) चूड़ा (ख) मूढ़ी

(ग) तालमखाना (घ) अचार

(vii) बहुत दिनों के बाद कवि ने क्या चूसे?

(क) आइसक्रीम (ख) आम

(ग) चुस्की (घ) गन्ने

(viii) किशोरियाँ कोकिल कंठी तान में गाते हुए क्या कूट रही थीं?

(क) मिर्च (ख) धान

(ग) गरम मसाला (घ) धनिया

(ix) कवि नागार्जुन ने किस ताजे-टटके फूल को जी भर सूँघे?

(क) गुलाब (ख) चमेली

(ग) मौलसिरी (घ) चंपा

(x) किसकी मुस्कान को कवि नागार्जुन गाँव पहुँचकर देखते हैं?

(क) पकी सुनहली फसल की (ख) फूलों की

(ग) परिवेश की (घ) घर की

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सिर्फ **दो वाक्यों** में दीजिए। (2x2=4)

(क) नागार्जुन की किन्हीं दो साहित्यिक विशेषताओं के बारे में लिखिए।

(ख) हिंदी के अलावा नागार्जुन को और कौन-कौन सी भाषा का ज्ञान था?

३. निम्न प्रश्नों के उत्तर **तीन** या **चार** वाक्यों में दीजिए।

(क) नागार्जुन का कवि परिचय दीजिए।

(ख) बहुत दिनों के बाद गाँव जाकर कवि क्या खाते और चूसते हैं?

(ग) गाँव में धान कूटती किशोरियों का कवि ने किस प्रकार वर्णन किया है?

(घ) कवि ने गाँव में जी भर क्या सूँघे?

४. निम्न प्रश्नों के उत्तर **दस-बारह** वाक्यों में दीजिए।

(क) हिंदी कविता को नागार्जुन का क्या योगदान है, लिखिए।

(ख) नागार्जुन की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

(ग) 'बहुत दिनों के बाद' कविता में किस तरह शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के पाँच बिंब साकार हुए हैं, आलोचना कीजिए।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' जी का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। उनका जन्म ७ मार्च १९११ ई. को कसाया (जिला देवरिया) में पुरातत्व शिविर में हुआ। उनके पिता का नाम डॉ. हीरानंद शास्त्री था। अपने पिता के साथ उनका अधिक समय कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। श्रीनगर और जम्मू में उन्होंने संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। स्व. राखालदास बंदोपाध्याय से उन्होंने बंगला भाषा का अध्ययन किया।

अज्ञेय का व्यक्तित्व क्रांतिकारी था। जब वे एम.ए. कर रहे थे तब क्रांतिकारी आंदोलन में फरार हुए। १९३० में गिरफ्तार हुए। चार साल जेल में रहे। और दो साल नजरबंद। उसके बाद उन्होंने किसान आंदोलन में भाग लिया। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलायी। वे बहुत सी कलाएँ भी जानते थे; मसलन-फोटोग्राफी, चर्म-शिल्प, पर्वतारोहण, सिलाई-कला आदि।

प्रतिभासंपन्न अज्ञेय ने 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक' और अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक्' का संपादन किया। साथ ही 'ऑल इंडिया रेडियो' में भी नौकरी की। १९४३ से ४५ तक सेना में रहे। उन्होंने समाचार साप्ताहिक 'दिनमान', 'नया प्रतीक' तथा 'दौनिक नवभारत टाइम्स' का कुशलतापूर्वक संपादन किया।

'प्रयोगवाद' के प्रवर्त्तक अज्ञेय ने १९४३ में 'तारसरतक' का संपादन किया। इसमें सात कवि संकलित थे जिन्हें उन्होंने 'राहों का अन्वेषी' कहा। इनमें से अधिकांश कवि प्रगतिवादी थे।

अज्ञेय यायावरी प्रकृति के थे। मूल रूप से ये प्रेम और प्रकृति के कवि हैं। अज्ञेय जी को १९६४ में 'आँगन के पार द्वार' काव्य संकलन पर 'साहित्य अकादमी' का पुरस्कार मिला। 'कितनी नावों में कितनी बार' कविता संग्रह पर उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

उनकी प्रमुख रचनाएँ :

इत्यलम्, बावरा अहेरी, हरी घास पर क्षण भर, आँगन के पार द्वार (कविताएँ), शेखर-एक जीवनी, नदी के द्वीप (उपन्यास), छोड़ा हुआ रास्ता, लौटती पगडंडियाँ (कहानियाँ), अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली (यात्रा वर्णन), त्रिशंकु, आत्मनेपद, अद्यतन आलोचना आदि।

हिरोशिमा

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौक पर,
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नहीं,
फटी मिट्टी से।
छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ीं-वह सूरज

नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचों-बीच नगर के
काल सूर्य के रथ के
पहियों के ज्यों अरे टूट कर
बिखर गये हों
दसों दिशा में।
कुछ क्षण का वह उदय-अस्त।
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेनेवाली दोपहरी फिर?
छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटीं लम्बी हो-हो कर
मानव ही सब भाप हो गये।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं,
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर।
मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बना कर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है।

प्रस्तुत कविता में उस विभीषिका का वर्णन किया गया है जब द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत में अमरीका ने परमाणु बम हिरोशिमा पर गिराया था। अमरीका द्वारा परमाणु बम गिराये जाने से भीषण नरसंहार हुआ। बम के फटने से ऐसा प्रकाश हुआ मानो सूरज निकल आया हो।

शब्दार्थ और भावार्थ :

क्षितिज - पृथ्वी और आकाश का सम्मिलित स्थान; अंतरीक्ष - पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का स्थान अर्थात् आकाश; काल-सूर्य - मृत्यु रूपी सूर्य; अरे - पहिये में डंडे, प्रज्वलित - जलता हुआ; गच - पक्की फर्श, धरातल; क्षण-बहुत थोड़ा, पल; साखी-साक्षी, गवाह; यहाँ 'सूर्य' एटम बम तथा 'धूप' बम के विस्फोट का प्रतीक है।

प्रस्तुत कविता में कवि कहता है एक दिन अचानक सूरज निकला, पर क्षितिज पर नहीं नगर के चौराहे पर उदित हुआ। चारों तरफ ऐसी धूप फैल गई जो अंतरिक्ष नहीं बल्कि फटी मिट्टी से फैलती हुई दिखाई पड़ी। कवि के कहने का यह आशय है कि हिरोशिमा नगर पर जो अणुबम गिरा, वह सूरज की तेज रोशनी वाला था।

जब परमाणु बम गिरा तो लोगों को दिशा का भ्रम हो गया और वे दिशाहीन होकर इधर-उधर भागने लगे। वह सूर्य पूरब दिशा में नहीं उगा था बल्कि नगर के बीचों-बीच अचानक बरस पड़ा था। अंजाम यह हुआ कि नगर में सूरज की तरह प्रकाश सर्वत्र फैल गया। इस दृश्य को देखकर ऐसा जाना पड़ा जैसे काल (समय) रूपी सूर्य के रथ के पहिए टूटकर दसों दिशाओं में बिखर गये हों, परिणाम स्वरूप यह भयानक प्रलयंकारी दृश्य दिखाई दे रहा हो। उस सूरज का उदय-अस्त कुछ क्षण

का था, जो एक प्रज्वलित क्षण को दृश्य सोख लेने वाली दोपहरी थी। वहाँ थोड़ी देर के लिए उजाला तेजी से फैला, फिर अँधेरा हो गया। इंसान की लाश लंबी हो-होकर-वहाँ बिछी नहीं, बल्कि इंसान सारे भाप हो गये, झुलसे हुए पत्थर और उजड़ी सड़क की गच को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भीषण विध्वंसकारी घटना घटित हुई है।

यह परमाणु बम मानव का रचा हुआ सूरज है जिसने मानव की जान इस तरह ले ली कि वह भाप बन गया। आज भी हिरोशिमा की धरती पर उस जली हुई छाया के प्रमाण मिलते हैं। इस विनाशकारी क्रूरता का परिचय आज भी मानव संस्कृति को मिलता रहता है।

प्रश्नोत्तर और अभ्यास

१. सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए। (अंक-१)

(i) नगर के चौराहे पर क्या उदित हुआ ?
(क) चाँद (ख) सूरज
(ग) सितारे (घ) ग्रह

(ii) धूप कहाँ से बरसी ?
(क) अंतरिक्ष से (ख) फटी मिट्‌टी से
(ग) तालाब से (घ) खेत से

(iii) सूरज सहसा कहाँ बरसा ?
(क) नगर के बाहर (ख) नगर के बीचोंबीच
(ग) गाँव में (घ) पार्क में

(iv) किसकी छायाएँ दिशाहीन सब ओर पड़ीं ?
(क) मानव जन की (ख) मानव मन की
(ग) बाघ-बकरी की (घ) शहरवालों की

(v) किसके रथ के पहिए टूट कर बिखर गये ?

(क) आयु के (ख) उम्र के

(ग) अर्जुन के (घ) काल सूर्य के

(vi) रथ के पहिए टूटकर कहाँ बिखरे ?

(क) एक दिशा में (ख) दो दिशा में

(ग) दसों दिशा में (घ) चारों दिशा में

(vii) परमाणु बम रूपी सूरज का उदय-अस्त कितने क्षण का था ?

(क) दो क्षणों का (ख) कुछ क्षणों का

(ग) चार घंटों का (घ) पाँच घंटों का

(viii) किसकी छायाएँ लंबी हो-होकर नहीं मिटीं ?

(क) मानव जन की (ख) पशु समाज की

(ग) आत्मा की (घ) परिजन की

(ix) परमाणु बम के फटने से कौन भाप हो गए ?

(क) बासिंदे (ख) मानव

(ग) चिड़िया (घ) बाघ

(x) जली हुई छाया किस पर लिखी है ?

(क) सिलेट पर (ख) दीवार पर

(ग) छत पर (घ) पत्थर पर

दुष्यंत कुमार

(१९३१-१९७५)

उर्दू की लोकप्रिय विधा 'गज़ल' का हिंदी में भी महत्वपूर्ण स्थान है। आज यह तेजी से लोकप्रिय हो रही है और इसका श्रेय दुष्यंत कुमार को है। उन्होंने अपने ढंग से समकालीन जीवन पर गज़लों के माध्यम से टिप्पणी की है। शब्द-समूह और मुहावरा हिंदी का है। फलत: उनकी गज़ल का प्रभाव गहरा और स्थायी होता है। उनकी गज़ल में एक ओर मस्ती और जिंदादिली है, वहीं दूसरी ओर तीखापन लिए एक गहराई भी होती है।

श्री दुष्यंत कुमार त्यागी का जन्म २७ सितंबर सन १९३१ में उत्तर प्रदेश के 'नवादा' गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम श्री भगवत सहाय और माता का नाम श्रीमती रामकिशोरी था। इनका पारिवारिक व्यवसाय 'कृषि' रहा है। वे स्वभाव से बड़े निर्भीक, विद्रोही और अलमस्त थे। दुष्यंतजी पर हरिवंश राय बच्चन और राष्ट्रकवि दिनकर का प्रभाव था! साथ ही नई कविता के कवियों में गजानन माधव मुक्तिबोध से भी दुष्यंतजी प्रभावित थे। एम.ए. करते समय दुष्यंतजी ने अपने महाविद्यालय के जीवन में 'बिहान' नामक एक छोटी पत्रिका का संपादन भी किया था।

हिंदी गज़ल के क्षेत्र में दुष्यंतजी को युग निर्माता कहा जाता है। हिंदी गज़ल लिखने से पहले वे नयी कविता के समर्थ कवि के रूप में परिचित हैं। रामशेर बहादुर सिंह एवं त्रिलोचन शास्त्री की हिंदी गज़लों से उन्हें प्रेरणा मिली। 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का वसंत' आदि उनकी चर्चित काव्य कृतियाँ हैं। नयी कविता में निहित कृत्रिमता, अति बौद्धिकता एवं शब्दों की काँट-छाँट से ऊबकर उन्होंने

अपनी भावभूमि के लिए गज़ल जैसी नाजुक, सरस और समतल धरातल की तलाश की। अपनी अभिव्यक्ति को आम आदमी तक सीधे-सीधे पहुँचाने के लिए उन्होंने गज़ल जैसी विधा को अपनाया है।

'साये में धूप' उनका गज़ल संग्रह है जो १९७५ में प्रकाशित हुआ। इसकी भाषा बोलचाल की है और यह हिंदी गज़ल क्षेत्र में अपना मूर्द्धन्य स्थान रखता है। अपनी दोहरी तकलीफ को आम आदमी तक आसानी से पहुँचाने के लिए उन्होंने आम बोली का उपयोग किया है ताकि अभिव्यक्ति सहज हो सके। ज्यादातर उर्दू के प्रचलित शब्दों को उन्होंने अपनाया है। अपनी गज़लों में उन्होंने सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भों को लिया है। साहित्य क्षेत्र में १९५७ से कार्यरत इस सफल स्त्रष्टा का देहान्त ४४ वर्ष की अल्पायु में २९ दिसम्बर १९७५ को हुआ।

हो गई है पीर पर्वत-सी

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर सड़क पर हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

भावार्थ :

'हो गई है पीर पर्वत सी' गज़ल में दुष्यंत कुमार वर्तमान शोषणपूर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोही चेतना को जगाना चाहते हैं। आज अन्याय-अत्याचार और शोषण की हद हो गई है, उसके खिलाफ असंतोष की आग भभक उठनी चाहिए। अब चुप नहीं रहना चाहिए। अचेत-बिखरी जन-चेतना की लाश में फिर से जान फूँकनी चाहिए। हरेक व्यक्ति के मन में इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति विरोध का सक्रिय भाव उत्तेजित होना चाहिए। 'सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं' यानी अब हड़ताल-मोर्चे आदि से काम नहीं चलेगा। व्यवस्था पूरी तरह से सड़ गल गई है; अत: उसे पूरी तरह बदलना जरुरी है।

शब्दार्थ :

पीर = पीड़ा, बुनियाद = नींव, जड़, हंगामा = लड़ाई-झगड़ा, मकसद = उद्देश्य।

प्रश्नोत्तर और अभ्यास

१. निम्नलिखित में से सही विकल्प चुनिए। (1x5=5)

(क) 'हो गई पीर पर्वत-सी' कविता के रचयिता कौन हैं?

(i) मैथिलीशरण गुप्त
(ii) केदारनाथ सिंह
(iii) दुष्यन्त कुमार
(iv) नागार्जुन

(ख) इस हिमालय से किसे निकलना चाहिए?

(i) गंगा को

(ii) यमुना को

(iii) गोदावरी को

(iv) महानदी को

(ग) किसके हिलने की शर्त थी?

(i) दीवार

(ii) पेड़

(iii) बुनियाद

(iv) पर्वत

(घ) कवि की कोशिश क्या है?

(i) प्रकृति बदलना चाहिए

(ii) जिंदगी बदलनी चाहिए

(iii) पोषाक बदलनी चाहिए

(iv) सूरत बदलनी चाहिए

(ङ) आग कहाँ पर जलनी चाहिए?

(i) जमीन में

(ii) समुद्र में

(iii) सीने में

(iv) कपड़ों में

उत्तर : क - (iii) दुष्यन्तकुमार

ख - (i) गंगा को

ग - (iii) बुनियाद

घ - (iv) सूरत

ङ - (iii) सीने में

२. एक - एक वाक्य में उत्तर दीजिए : (1x5=5)

(i) पीर को क्यों पिघलनी चाहिए?

(ii) गंगा कहाँ से निकलनी चाहिए?

(iii) दीवार किस तरह हिलने लगी है?

(iv) लाश कैसे चलनी चाहिए?

(v) आग कहाँ होती है?

उत्तर :

२. (i) पर्वत-सी हो जाने के कारण पिघलनी चाहिए।

(ii) हिमालय से गंगा निकलनी चाहिए।

(iii) दीवार परदे की तरह हिलने लगी है।

(iv) हाथ हिलाते हुए लाश को चलना चाहिए।

(v) आग को हर सीने में होना चाहिए।

३. किन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर दो वाक्यों में दीजिए। (2x2=4)

(i) हर लाश को कहाँ और क्यों चलने की बात कही गई हैं?

(ii) प्रस्तुत कविता में कवि का मकसद क्या है?

४. किन्हीं दो के उत्तर तीन वाक्यों में दीजिए। (3x2=6)

(i) दुष्यन्त कुमार का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(ii) आज की स्थिति के बारे में दुष्यन्त क्या कहते है?

(iii) कविता के अन्त में दुष्यन्त जी क्या अपेक्षा रखते हैं?

५. किसी एक का उत्तर दीजिए : (5x1=5)

(i) कवि के रूप में दुष्यन्त कुमार का परिचय दीजिए।

(ii) प्रस्तुत कविता का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर :

३. (i) बाहरी हलचल की जगह अन्दर से बुनियादी परिवर्त्तन पर बल दिया जाना चाहिए। वरना ऊपरी छोटे मोटे परिवर्त्तन से कुछ होनेवाला नहीं।

(ii) जिन्दा लाश की तरह जीनेवालों का आह्वान करते हुए दुष्यन्तकुमार कहते हैं कि उनमें प्राण का संचार होना चाहिए। हर जगह गाँव, नगर, हर गली में जोश के साथ जीवन्त होकर पेश आना चाहिए।

(iii) केवल चिल्लाकर हंगामा खड़ा करना कवि का उद्देश्य नहीं है। बल्कि कवि चाहता है पूरी तरह समाज का चेहरा बदल देना चाहिए।

४. (i) उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के 'नवादा' गाँव में सन् १९३१ को हुआ। प्रख्यात कवि हरिवंश राय बच्चन एवं दिनकर जी का प्रभाव ग्रहण करके उन्होंने अपनी रचनाएँ शुरु कर

दीं। हिन्दी गजल के क्षेत्र में इन्हें युग-निर्माता माना जाता है। 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए बन का वसन्त' और 'साये में धूप' उनके काव्य-संग्रह हैं। उर्दू के प्रचलित शब्द, बोलचाल की भाषा के कारण उनकी कविताएँ आदृत हुई हैं।

(ii) दुष्यन्त कुमार समकालीन समाज की अधोगति एवं विसंगतियों के बारे में बताते हैं कि समाज में दु:ख-दर्द बढ़ गये हैं, छोटी-मोटी समस्याओं के निराकरण न करके पूरी तरह जड़ से उसे सुधारना चाहिए। लोगों में जोश और जिन्दादिली होनी चाहिए। सालिस से काम नहीं चलेगा, क्रान्तिकारी भावनाओं के साथ परिवर्तन लाना चाहिए।

(iii) दुष्यन्त जी चाहते हैं कि कहीं भी समाज में किसी के मन में क्रान्तिकारी भाव हैं, धधकती आग है तो उसे प्रज्ज्वलित करना चाहिए। डरे हुए, सहमे हुए पारंपरिक विचार से काम नहीं चलेगा। प्रगतिशील विचार की सख्त आवश्यकता है। कवि यहाँ गतिशील विचार के पक्षधर हैं। अपनी रचनाओं के जरिए सबको जगाना चाहते हैं।

५. परिचय के लिए = 4 अंक

भाषा-शैली के लिए = 1अंक

केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह का जन्म १९३४, चकिया (बलिया), उत्तरप्रदेश में हुआ। आरंभिक शिक्षा गाँव में हुई। बाद की शिक्षा हाईस्कूल से लेकर एम.ए. तक बनारस में (१९५६) । 'आधुनिक कविता में बिंब-विधान' (१९६४) पर पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की। विधिवत् काव्य-लेखन १९५२-५३ के आसपास शुरु किया। शिक्षा प्राप्त करने के बाद अध्यापक कार्य में संलग्न हो गए।

तीसरा सप्तक (१९५९) के सात कवियों में से एक। प्रथम कविता संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' १९६० में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं ने इस कवि को प्रथम श्रेणी के कवियों में स्थान दिला दिया। मानव और प्रकृति के प्रति गहन अनुराग, जन की पीड़ा का सच्चा अनुभव और काव्य-संवेदना की ईमानदारी केदारनाथ के काव्य की पहचान रही है। आरंभ में नये बिंबों के प्रति आकृष्ट हुए पर बाद में बिंब-मोह धीरे-धीरे कम होता गया। उनके काव्यानुभव में जीवन-यथार्थ गहरे रूप से प्रवेश करता गया और काव्य-शिल्प में धूप-सा खुलापन आ गया। १९८० में प्रकाशित 'जमीन पक रही है' शीर्षक काव्य संग्रह में जो कविताएँ हैं, उनमें सामाजिक-राजनीतिक चेतना का स्वर प्रखर है। इसमें कवि ने आम आदमी के दर्द को बड़े उदार भाव से खुलकर कहा है। 'अकाल में सारस' (१९८८) काव्य-संग्रह की कविताओं में बौद्धिक सघनता और विचारों की ऊर्जा का विस्फोट है। उन्होंने नये काव्य-मुहावरों का प्रयोग किया है, अत: केदारनाथ सिंह की कविताएँ सन् १९६० के बाद की कविताएँ अपनी खास पहचान रखती हैं। 'अकाल

में सारस' काव्य-संग्रह पर इन्हें १९८९ में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया है। काव्यपाठ के लिए अमरीका, रूस, कज्जकिस्तान, लंदन, पैरिस, इटली आदि देशों की उन्होंने यात्राएँ की हैं।

उनके द्वारा संपादित पुस्तकें हैं -ताना-बाना (आधुनिक भारतीय कविता से एक चयन), समकालीन रूसी कविताएँ, कविता दशक। संप्रति वे 'साखी' पत्रिका के प्रधान संपादक हैं।

रोटी

उसके बारे में कविता करना
हिमाकत की बात होगी
और वह मैं नहीं करूँगा
मैं सिर्फ आपको आमंत्रित करूँगा
कि आप आएँ और मेरे साथ सीधे
उस आग तक चलें
उस चूल्हे तक-जहाँ वह पक रही है
एक अद्‌भुत ताप और गरिमा के साथ
समूची आग को गन्ध में बदलती हुई
दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज
वह पक रही है
और पकना
लौटना नहीं है जड़ों की ओर
वह आगे बढ़ रही है
धीरे-धीरे

झपट्टा मारने को तैयार
वह आगे बढ़ रही है
उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद
और विचारों तक
मुझे विश्वास है
आप उसका सामना कर रहे हैं
मैंने उसका शिकार किया है
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ
मेरे हाथ खोजने लगते हैं
अपने तीर और धनुष
मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं
जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ
मैंने जब भी उसे तोड़ा है
मुझे हर बार वह पहले से ज्यादा स्वादिष्ट लगी है
पहले से ज्यादा गोल
और खूबसूरत
पहले से ज्यादा सूर्ख और पकी हुई
आप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे-यह भूख के बारे में

आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है
आप देखेंगे
दीवारें धीरे-धीरे
स्वाद में बदल रही हैं।

प्रस्तुत कविता में कवि केदारनाथ सिंह रोटी के बारे में कहना चाहते हैं। यह कविता आदमी और रोटी के संबंध की कविता है।

कवि कहते हैं कि रोटी के बारे में अगर वह बात करते हैं तो वह हिमाकत (बेवकूफी) की बात होगी। उसके बारे में विशद विवरण देन को बजाय वह सीधे आपको अपने साथ उस जगह आमंत्रित कर ले जाना चाहते हैं। वह अपने साथ हमें उस चूल्हे तक ले जाना चाहते हैं जहाँ आग जल रही है और उस आग में रोटी पक रही है। यहाँ कवि आग की बात इसलिए कह रहे हैं, क्योंकि जब सभ्यता का विकास हुआ तब मानव ने सबसे पहले आग का आविष्कार किया। इस कविता में कवि रोटी और आग के संबंध की बात करते है।

रोटी का संबंध मनुष्य के पेट और भूख के साथ है। और उस आग में जब रोटी पकती है तो वह अपने साथ अद्‌भुत ताप और गरिमा को साथ लिए हुए होती है। जब रोटी पकती है तो वह समूची आग को गंध में बदल देती है। इस कविता में रोटी मुख्य है। कवि ने रोटी के सौंदर्य की परिभाषा देते हुए कहा है वह दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज है।

रोटी खाने का प्रतीक है। रोटी का पकना जड़ों की ओर लौटना नहीं है। क्योंकि रोटी का आविष्कार पुराना हो चुका है। अब लोग चेत

गए हैं। वे आगे बढ़कर अपना हक माँगने चले हैं। इसलिए मानो लोग झपट्टा मारने को तैयार हैं। क्योंकि रोटी आसानी से नहीं मिलती। रोटी के लिए शिकार यानी मेहनत करनी पड़ती है। तब से लेकर आज तक सभ्यता के विकास में भूख मुख्य है जो रोटी से जुड़ी है। रोटी मनुष्य के विचारों को भी प्रभावित करने लगी है। भूखे लोगों के प्रति उनके अधिकारों के प्रति सजगता बढ़ रही है।

जो लोग यह सोचते हैं कि जब रोटी पक जाती है और आग से निकलती है तो लोग अपने तीर-धनुष खोजने लगते हैं ताकि रोटी सुरक्षित रहे। लोग उसे पाने को हाथ बढ़ाते हैं और कुछ लोग उसे छीनकर ले जाना चाहते हैं। लेकिन आज वह संभव नहीं है। भूखे को भोजन का स्वाद मिल चुका है। इसलिए खाद्य वस्तु आज गोल रोटी की भाँति सुंदर लगती है। वह अच्छी तरह पकती है तो उसका रंग निखरता है। उसे देखकर लोगों की भूख बढ़ती है।

ध्यान देने की बात यह है कि रोटी आग में पकती है अर्थात मनुष्य की मेहनत से बनती है। रोटी आग से बनती है। रोटी बनना और भूखे के पास पहुँचना दोनों महत्वपूर्ण बातें हैं। घर की खूबसूरती रोटी से है। रोटी पकती है तो घर की दीवारें खूबसूरत लगती हैं।

ये बातें सब को मालूम करा दी जायँ, तभी रोटी का सच्चा स्वाद सबको मिलेगा। कवि स्पष्ट करना चाहते हैं कि सभ्यता के विकास में भूख मुख्य है। हर बार रोटी ज्यादा स्वादिष्ट लगती है और पहले से भी ज्यादा गोल और खूबसूरत और भूख का बयान आग ही कर सकती है।

प्रश्न

१. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) किसके बारे में बात करना हिमाकत होगी ?

(क) रोटी (ख) दाल

(ग) चना (घ) आटा

(ii) दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज क्या है ?

(क) चावल (ख) मिठाई

(ग) रोटी (घ) लड्डू

(iii) कौन झपट्टा मारने को तैयार है ?

(क) आदमी (ख) बाघ

(ग) रोटी (घ) मिठाई

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर **दो** वाक्यों में दीजिए। (२)

(क) लेखक क्यों रोटी पकने की जगह तक लोगों को ले जाना चाहता है ?

(ख) पकना जड़ों की ओर लौटना नहीं है क्यों, उत्तर दीजिए।

(ग) 'मैंने उसका शिकार किया है ?' - समझाकर लिखिए।

३. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर **तीन-चार वाक्यों** में दीजिए। (३)

(क) रोटी के बारे में कविता करना हिमाकत की बात क्यों होगी ?

(ख) लेखक को रोटी हर बार गोल और खूबसूरत क्यों लगती है ?

(ग) दीवारें स्वाद में बदल रही हैं का क्या अर्थ है?

४. निम्नलिखित प्रश्नों के **दस-बारह वाक्यों** में उत्तर दीजिए। (५)

(क) 'रोटी' कविता का संदेश क्या है?

(ख) रोटी के साथ ताप और गरिमा क्यों जुड़ी है?

(ग) कवि कविता को नहीं, किसको इशारा कर रहा है?

(घ) कवि केदारनाथ सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

मुंशी प्रेमचंद

(३१.०७.१८८०-०८.१०.१९३६)

प्रेमचंद का जन्म बनारस से चार मील दूर लमही ग्राम में हुआ। प्रारंभिक पढ़ाई गाँव की पाठशाला में हुई। फिर आगे बनारस के मिशन स्कूल से मैट्रिक पास किया। बाद में प्राइवेट स्तर पर बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापन से जीवकोपार्जन की शुरुआत। तत्पश्चात् गहन अध्ययन में जुट गये। सरकारी नौकरी की। स्कूलों के सब-डिप्टी इंस्पेक्टर रहे। १९२० में महात्मा गांधी के आह्वान पर सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। लेखन के जरिए राष्ट्र सेवा को पूरी तरह समर्पित। उन्होंने हिंदी-उर्दू दोनों भाषाओं में कलम चलायी। उन्हें दोनों भाषाओं के पाठकों से अपार स्नेह मिला। १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की। कई पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

रचनाएँ- इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं-सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, प्रतिज्ञा, कर्मभूमि रंगभूमि, गोदान जैसे उपन्यास। इनकी कहानियाँ लगभग तीन सौ हैं।

जीवन में साहित्य का स्थान

साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। उसकी अटारियाँ, मीनार और गुम्बद बनते हैं, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को भी जी नहीं चाहेगा। जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिए अनंत है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा के अपने कामों का जवाबदेह है या नहीं, हमें मालूम नहीं, लेकिन साहित्य तो मनुष्य के सामने जवाबदेह है। इसके लिए कानून हैं, जिनसे वह इधर-उधर नहीं हो सकता। जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवनपर्यंत आनंद ही की खोज में लगा रहता है। किसी को वह रत्न द्रव्य में मिलता है, किसी को भरेपूरे परिवार में किसी को लम्बे-चौड़े भवन में, किसी को ऐश्वर्य में, लेकिन साहित्य का आनंद इस आनंद से ऊँचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुंदर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है, उसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोग के आनंद में ग्लानि छिपी होती है। उससे अरुचि भी हो सकती है, पश्चाताप भी हो सकता है, पर सुंदर से जो आनंद प्राप्त होता है, वह अखंड है, अमर है।

साहित्य के नौ रस कहे गए हैं। प्रश्न होगा, वीभत्स में भी कोई आनंद है? अगर ऐसा न होता, तो वह रसों में गिना ही क्यों जाता? हाँ, है। वीभत्स में सुंदर और सत्य मौजूद हैं। भारतेन्दु ने श्मशान का जो वर्णन किया है, वह कितना वीभत्स है! प्रेतों और पिशाचों का अधजले मांस के लोथड़े नोचना, हड्डियों को चटर-चटर चबाना, वीभत्स की पराकाष्ठा है, लेकिन वह वीभत्स होते हुए भी सुंदर है, क्योंकि उसकी सृष्टि पीछे आनेवाले स्वर्गीय दृश्य के

आनंद को तीव्र करने के लिए ही हुई है। साहित्य तो हरएक रस में सुंदर खोजता है-राजा के महल में, रंक की झोपड़ी के शिखर पर, गंदे नालों के अंदर, ऊषा की लाली में, सावन-भादों की अँधेरी रात में। और यह आश्चर्य की बात है कि रंक की झोपड़ी में जितनी आसानी से सुंदर मूर्तिमान दिखाई देता है, महलों में नहीं। महलों में तो वह खोजने से मुश्किलों से मिलता है।

जहाँ मनुष्य अपने मौलिक, यथार्थ, अकृत्रिम रूप में है, वहीं आनंद है। आनंद कृत्रिमता और आडम्बर से कोसों भागता है। सत्य का कृत्रिम से क्या सम्बन्ध ? अतएव हमारा विचार है कि साहित्य में केवल एक रस है और वह श्रृङ्गार है। कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की गणना साहित्य में की जा सकती है, जो श्रृङ्गारविहीन और असुन्दर हो, जो रचना केवल वासना-प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावों को जगाना हो, जो केवल बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखे, वह साहित्य नहीं है। जासूसी उपन्यास अद्‌भुत होता है। लेकिन हम उसे साहित्य उसी वक्त कहेंगे, जब उसमें सुंदर का समावेश हो। खुनी का पता लगाने के लिए सतत उद्योग, नाना प्रकार के कष्टों का झेलना, न्याय-मर्यादा की रक्षा करना, ये भाव हैं, जो इस अद्‌भुत रस की रचना को सुंदर बना देते हैं।

सत्य से आत्मा का सम्बन्ध तीन प्रकार का है। एक जिज्ञासा का सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजन का सम्बन्ध है और तीसरा आनंद का। जिज्ञासा का सम्बन्ध दर्शन का विषय है, प्रयोजन का सम्बन्ध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल आनंद का सम्बन्ध है। सत्य जहाँ आनन्द का स्त्रोत बन जाता है, वहीं वह साहित्य हो जाता है। जिज्ञासा का सम्बन्ध विचार से है, प्रयोजन का सम्बन्ध स्वार्थ-बुद्धि से। आनंद का सम्बन्ध मनोभावों से है। साहित्य का विकास मनोभावों द्वारा ही होता है। एक ही दृश्य या घटना या कांड को हम तीनों ही भिन्न-भिन्न नजरों से देख सकते हैं। हिम से ढँके हुए

पर्वत पर ऊषा का दृश्य दार्शनिक के गहरे विचार की वस्तु है, वैज्ञानिक के लिए अनुसंधान की और साहित्यिक के लिए विह्वलता की! विह्वलता एक प्रकार का आत्म-समर्पण है। यहाँ हम पृथकता का अनुभव नहीं करते। यहाँ ऊँच-नीच, भले-बुरे का भेद नहीं रह जाता। श्रीरामचन्द्र शबरी के जूठे बेर क्यों प्रेम से खाते हैं, कृष्ण भगवान् विदूर के शाक को क्यों नाना व्यंजनों से रुचिकर समझते हैं, इसलिए कि उन्होंने इस पार्थक्य को मिटा दिया है। उनकी आत्मा विशाल है। उसमें समस्त जगत् के लिए स्थान है। आत्मा आत्मा से मिल गई है। जिसकी आत्मा जितनी ही विशाल है,वह उतना ही महापुरुष है। यहाँ तक कि ऐसे महान् पुरुष भी हो गए हैं, जो जड़ जगत् से भी अपनी आत्मा का मेल कर सके हैं।

आइए देखें, जीवन क्या है? जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नहीं है। यह तो पशुओं का जीवन है। पर इनके उपरांत कुछ और भी होता है। उसमें कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती हैं, जो प्रकृति के साथ हमारे मेल में बाधक होती हैं, कुछ ऐसी होती हैं, जो इस मेल में सहायक बन जाती हैं। जिन प्रवृतियों में प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य बढ़ता है, वह वांछनीय होती है, जिनसे सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है, वे दूषित हैं। अहंकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि हम इनको बेरोकटोक चलने दें, तो निस्संदेह वह हमें नाश और पतन की ओर ले जायेंगी। इसलिए हमें उनकी लगाम रोकनी पड़ती है, उन पर संयम रखना पड़ता है, जिसमें वे अपनी सीमा से बाहर न जा सकें। हम उन पर जितना कठोर संयम रख सकते हैं, उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो जाता है।

किंतु नटखट लड़कों से डाँटकर कहना- तुम बड़े बदमाश हो, हम तुम्हारे कान पकड़कर उखाड़ लेंगे-अक्सर व्यर्थ ही होता है, बल्कि उस प्रवृत्ति को और हठ की ओर ले जाकर पुष्ट कर देता है। जरुरत यह होती है कि

बालक में जो सद्वृत्तियाँ हैं, उन्हें उत्तेजित किया जाय कि दूषित वृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से शांत हो जायँ। साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है। सत्य को रसों द्वारा हम जितनी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान और विवेक द्वारा नहीं कर सकते, उसी भाँति जैसे दुलार-चुमकारकर बच्चों को जितनी सफलता से वश में किया जा सकता है, डाँट-फटकार से सम्भव नहीं। कौन नहीं जानता कि प्रेम से कठोर से कठोर प्रकृति को नरम किया जा सकता है। साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है। यही कारण है कि हम उपनिषदों और अन्य धर्म-ग्रंथों को साहित्य की सहायता लेते देखते हैं। हमारे धर्माचार्यों ने देखा कि मनुष्य पर सबसे अधिक प्रभाव मानव-जीवन के दुख-सुख के वर्णन से ही हो सकता है और उन्होंने मानव-जीवन की वे कथाएँ रचीं, जो आज भी हमारे आनंद की वस्तु हैं। बौद्धों की जातक-कथाएँ, तौरेह, कुरान, इंजील ये सभी मानवी कथाओं के संग्रह-मात्र हैं। उन्हीं कथाओं पर हमारे बड़े-बड़े धर्म स्थिर हैं। वही कथाएँ धर्मों की आत्मा हैं। उन कथाओं को निकाल दीजिए तो उस धर्म का अस्तित्व मिट जाएगा। क्या उन धर्म-प्रवर्त्तकों ने अकारण ही मानवी जीवन की कथाओं का आश्रय लिया? नहीं, उन्होंने देखा कि हृदय द्वारा ही जनता की आत्मा तक अपना संदेश पहुँचाया जा सकता है। वे स्वयं विशाल हृदय के मनुष्य थे। उन्होंने मानव-जीवन से अपनी आत्मा का मेल कर लिया था। समस्त मानव-जाति से उनके जीवन का सामंजस्य था, फिर वे मानव-चरित्र की उपेक्षा कैसे करते?

आदिकाल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख-दुःख, हँसने-रोने का मर्म समझ सकते हैं, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है। विद्यार्थी को विद्यार्थी जीवन से, कृषक को कृषक जीवन

से जितनी रुचि है, उतनी अन्य जातियों से नहीं, लेकिन साहित्य जगत् में प्रवेश पाते ही यह भेद, यह पार्थक्य मिट जाता है। हमारी मानवता जैसे विशाल और विराट् होकर समस्त मानव जाति पर अधिकार पा जाती है। मानव जाति ही नहीं, चर और अचर, जड़ और चेतन सभी उसके अधिकार में आ जाते हैं। उसे मानो विश्व की आत्मा पर साम्राज्य प्राप्त हो जाता है। श्री रामचन्द्र राजा थे, पर आज रंक भी उनके दु:ख से उतना ही प्रभावित होता है, जितना कोई राजा हो सकता है।

साहित्य वह जादू की लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन करादेती है। मानव-हृदय का जगत्, इस प्रत्यक्ष जगत् जैसा नहीं है। हम मनुष्य होने के कारण मानव जगत् के प्राणियों में अपने को अधिक पाते हैं, उसके सुख-दुख, हर्ष और विषाद से ज्यादा विचलित होते हैं। हम अपने निकटतम बंधु-बांधवों से अपने को इतना निकट नहीं पाते, इसलिए कि हम उसके एक-एक विचार, एक-एक उद्गार को जानते हैं। उसका मन हमारी नजरों के सामने आईने की तरह खुला हुआ है। जीवन में ऐसे प्राणी हमें कहाँ मिलते हैं, जिनके अंत:करण में हम इतनी स्वाधीनता से विचार सकें? सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है कि उसके भावों में व्यापकता हो, उसने विश्व की आत्मा से ऐसी 'हारमनी' प्राप्त कर ली हो कि उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपने ही भाव मालूम हों।

साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है। 'टाम काका की कुटिया' गुलामी की प्रथा से व्यथित हृदय की रचना है,

पर आज उस प्रथा के उठ जाने पर भी उसमें वह व्यापकता है कि हम लोग उसे पढ़कर मुग्ध हो जाते हैं। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। वह सदा नया बना रहता है। दर्शन और विज्ञान समय की गति के अनुसार बदलते हैं, पर साहित्य तो हृदय की वस्तु है और मानव-हृदय में तबदीलियाँ नहीं होतीं। हर्ष और विस्मय, क्रोध और द्वेष, आशा और भय, आज भी हमारे मन पर उसी तरह अधिकृत हैं, जैसे आदिकवि वाल्मीकि के समय में थे और कदाचित् अनंत तक रहेंगे। रामायण के समय का समय अब नहीं है, महाभारत का समय भी अतीत हो गया, पर ये ग्रंथ अभी तक नए हैं। साहित्य ही सच्चा इतिहास है, क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहास में नहीं हो सकता। घटनाओं की तालिका इतिहास नहीं है, और न राजाओं की लड़ाइयाँ ही इतिहास है। इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है, जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है, क्योंकि साहित्य अपने देशकाल का प्रतिबिम्ब हाता है।

जीवन में साहित्य की उपयोगिता के विषय में कभी-कभी संदेह किया जाता है। कहा जाता है, जो स्वभाव से अच्छे हैं, वह अच्छे ही रहेंगे, चाहे कुछ भी पढ़ें। जो स्वभाव से बुरे हैं, वह बुरे ही रहेंगे, चाहे कुछ भी पढ़े। इस कथन में सत्य की मात्रा बहुत कम है। इसे सत्य मान लेना मानव-चरित्र को बदल देना होगा। जो सुंदर है, उसकी ओर मनुष्य का स्वाभाविक आकर्षण होता है। हम कितने ही पतित हो जायँ, पर असुंदर की ओर हमारा आकर्षण नहीं हो सकता। हम कर्म चाहे कितने ही बुरे करें, पर यह असम्भव है कि करुणा और दया और प्रेम और भक्ति का हमारे दिलों पर असर न हो। नादिरशाह से ज्यादा निर्दयी मनुष्य और कौन हो सकता है-हमारा आशय दिल्ली में कतले आम करानेवाले नादिरशाह से है। अगर दिल्ली का कतले आम सत्य घटना है, तो नादिरशाह के निर्दय होने में कोई संदेह नहीं रहता। उस समय आपको

मालूम है, किस बात से प्रभावित होकर उसने कतले आम बंद करने का हुक्म दिया था? दिल्ली के बादशाह का वजर एक रसिक मनुष्य था। जब उसने देखा कि नादिरशाह का क्रोध किसी तरह नहीं शांत होता और दिल्ली वालों के खून की नदी बहती चली जाती है, यहाँ तक कि खुद नादिरशाह के मुँहलगे अफसर भी उसके सामने आने का साहस नहीं करते, तो वह हथेलियों पर जान रखकर नादिरशाह के पास पहुँचा और यह शेर पढ़ा-

'कसे न माँद कि दीगर ब तेगे नाज कुशी।

मगर कि जिंदा कुनी खल्क स व बाज कुशी।'

इसका अर्थ यह हुआ कि तेरे प्रेम की तलवार ने अब किसी को जिंदा न छोड़ा। अब तो तेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि तू मुर्दों को फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू करे। यह फारसी के एक प्रसिद्ध कवि का श्रृङ्गार-विषयक शेर है, पर इसे सुनकर कातिल के दिल में मनुष्य जाग उठा। इस शेर ने उसके हृदय के कोमल भाग को स्पर्श कर दिया और कतले आम तुरंत बंद कर दिया गया।

नेपोलियन के जीवन की वह घटना भी प्रसिद्ध है, जब उसने एक अँगरेज मल्लाह को झाऊँ की नाव पर कैले का समुद्र पार करते देखा। जब फ्रांसीसी अपराधी मल्लाह को पकड़कर नेपोलियन के सामने लाये और उसने पूछा-तू इस भंगुर नौका पर क्यों समुद्र पार कर रहा था, तो अपराधी ने कहा-इसलिए कि मेरी वृद्धा माता घर पर अकेली है, मैं उसे एक बार देखना चाहता था। नेपोलियन की आँखों में आँसू छलछला आये। मनुष्य का कोमल भाव स्पंदित हो उठा। उसने उस सैनिक को फ्रांसीसी नौका पर इंगलैंड भेज दिया।

मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच या और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है-उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके। हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है। हम जो कुछ हैं, साहित्य के ही बनाए हैं। विश्व की आत्मा के अंतर्गत भी राष्ट्र या देश की एक आत्मा होती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि है-साहित्य।

योरप का साहित्य उठा लीजिए। आप वहाँ संघर्ष पाएँगे। कहीं खूनी कांडों का प्रदर्शन है, कहीं जासूसी कमाल का। जैसे सारी संस्कृति उन्मत्त होकर मरू में जल खोज रही है। उस साहित्य का परिणाम यही है कि वैयक्तिक स्वार्थपरायणता दिन-दिन बढ़ती जाती है, अर्थ-लोलुपता की कहीं सीमा नहीं, नित्य दंगे, नित्य लड़ाइयाँ। प्रत्येक वस्तु स्वार्थ के काँटे पर तौली जा रही है। यहाँ तक कि अब किसी यूरोपियन महात्मा का उपदेश सुनकर भी संदेह होता है कि इसके परदे में स्वार्थ न हो।

साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा है। जब आदर्श ही भ्रष्ट हो गया, तो समाज के पतन में बहुत दिन नहीं लगते। नई सभ्यता का जीवन १५० साल से अधिक नहीं, पर अभी से संसार उससे तंग आ गया है, पर इसके बदले में उसे कोई ऐसी वस्तु नहीं मिल रही है, जिसे वहाँ स्थापित कर सके। उसकी दशा उस मनुष्य की-सी है, जो यह तो समझ रहा है कि वह जिस रास्ते पर जा रहा है, वह ठीक रास्ता नहीं है, पर वह इतनी दूर जा चुका है कि अब लौटने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। वह आगे ही जायेगा-चाहे उधर कोई समुद्र ही क्यों न लहरें मार रहा हो। उसमें नैराश्य का हिंसक बल है, आशा की उदार शक्ति नहीं।

भारतीय साहित्य का आदर्श उसका त्याग और उत्सर्ग है। युरोप का कोई व्यक्ति लखपती होकर, जायदाद खरीदकर, कम्पनियों में हिस्से लेकर और ऊँची सोसाइटी में मिलकर अपने को कृतकार्य समझता है। भारत अपने को उस समय कृतकार्य समझता है, जब वह इस माया-बंधन से मुक्त हो जाता है, जब उसमें भोग और अधिकार का मोह नहीं रहता। किसी राष्ट्र की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते हैं। व्यास और वाल्मीकि ने जो आदर्शों की सृष्टि की, वह आज भी भारत का सिर ऊँचा किए हुए हैं। राम अगर वाल्मीकि के साँचे में न ढलते, तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचे में ढलकर सीता हुईं। यह सत्य है कि हम सब ऐसे चरित्रों का निर्माण नहीं कर सकते, पर धन्वंतरि के एक होने पर भी संसार में वैद्यों की आवश्यकता है और रहेगी।

ऐसा महान् दायित्व जिस वस्तु पर है, उसके निर्माताओं का पद कुछ कम जिम्मेदारी का नहीं है। कलम हाथ में लेते ही हमारे सिर पर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ जाती है। साधारण: युवावस्था में हमारी निगाह पहले विध्वंस करने की ओर उठ जाती है। हम सुधार करने की धुन में अंधाधुंध शर चलाना शुरू करते हैं। खुदाई फौजदार बन जाते हैं। तुरंत आँखें काले धब्बों की ओर पहुँच जाती हैं। यथार्थवाद के प्रवाह में बहने लगते हैं। बुराइयों के नग्न चित्र खींचने में कला की कृतकार्यता समझते हैं। यह सत्य है कि कोई मकान गिराकर ही उसकी जगह नया मकान बनाया जाता है। पुराने ढकोसलों और बंधनों को तोड़ने की जरुरत है, पर इसे साहित्य नहीं कह सकते। साहित्य तो वही है, जो साहित्य की मर्यादाओं का पालन करे।

हम अक्सर साहित्य का मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देते हैं। शायद हम समझते हैं कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा में लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्य का अंग है, पर स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं

करता, निर्माण करता है। वह मानव-चरित्र की कालिमाएँ नहीं दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है। मकान गिराने-वाला इंजीनियर नहीं कहलाता। इंजीनियर तो निर्माण ही करता है। हममें जो युवक साहित्य को अपने जीवन का ध्येय बनाना चाहते हैं, उन्हें बहुत आत्मसंयम की आवश्यकता है, क्योंकि वह अपने को एक महान् पद के लिए तैयार कर रहे हैं, जो अदालतों में बहस करने या कुरसी पर बैठकर मुकद्दमे का फैसला करने से कहीं ऊँचा है। उसके लिए केवल डिग्रियाँ और ऊँची शिक्षा काफी नहीं। चित्त की साधना, संयम, सौंदर्य-तत्त्व का ज्ञान, इसकी कहीं ज्यादा जरुरत है।

साहित्यकार को आदर्शवादी होना चाहिए। भावों का परिमार्जन भी उतना ही वांछनीय है। जब तक हमारे साहित्य-सेवी इस आदर्श तक न पहुँचेंगे, तब तक हमारे साहित्य से मंगल की आशा नहीं की जा सकती। अमर साहित्य के निर्माता विलासी प्रवृत्ति के मनुष्य नहीं थे। वाल्मीकि और व्यास दोनों तपस्वी थे। सूर और तुलसी भी विलासिता के उपासक न थे। कबीर भी तपस्वी ही थे।

हमारा साहित्य अगर आज उन्नति नहीं करता, तो इसका कारण यही है कि हमने साहित्य-रचना के लिए कोई तैयारी नहीं की। दो-चार नुस्खे याद करके हकीम बन बैठे। साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है और हमारी ईश्वर से यही याचना है कि हममें सच्चे साहित्य-सेवी उत्पन्न हों, सच्चे तपस्वी, सच्चे आत्मज्ञानी।

यह पाठ:

इस पाठ में जीवन में साहित्य के महत्व पर चर्चा की गई है। साहित्य के माध्यम से हमारा संपूर्ण जीवन अभिव्यक्ति पाता है। साहित्य का आधार सुन्दर और सत्य है। लेखक कहता है कि सौंदर्य को खोज निकालना है।

साहित्य में कृत्रिमता के लिए स्थान नहीं है। लेखक का मानना है कि सत्य जब आनन्द का स्रोत बन जाता है तब वह साहित्य कहलाता है। साहित्य केवल मात्र दिमाग की उपज नहीं है। वह तो हृदय-पक्ष से जुड़ा है। साहित्यकार मानव जीवन से अपनी आत्मा का मेल करता है और फिर साहित्य की सर्जना करता है। साहित्य स्थावर, जंगम सब में प्राण का संचार कर देता है। साहित्यकार अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब देश में किसी भी प्रकार का परिवर्तन आता है तो साहित्यकार उससे स्वत: प्रभावित होता है। हम साहित्य में जीवन के शाश्वत मूल्यों को अनुभव करते हैं। साहित्य में अपने देशकाल की छबि हमेशा देखी जा सकती है। भारतीय साहित्य का आदर्श उसका त्याग है। साहित्यकार को साहित्य साधना के लिए चित्त की साधना, संयम, सौंदर्य तत्त्व के अनुभव की आवश्यकता है। साहित्य के उत्थान से ही राष्ट्र का विकास होता है। इसलिए हमें सच्चे साहित्यकारों की आवश्यकता है, जो-व्यास वाल्मीकि की तरह सच्चे तपस्वी और आत्मज्ञानी हों।

शब्दार्थ :

अगम्य-जहाँ न पहुँचा जा सके, जवाबदेह-उत्तर दायी होना, जिज्ञासा-जानने की इच्छा, मनोवृत्ति-मन के भाव, तबदीलियाँ-परिवर्तन, स्त्रष्टा-सृजन करने वाला।

प्रश्न और अभ्यास :

१. सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान भरिए।

(i) साहित्य का आधार _____ है।

(A) प्रेम (B) जीवन

(C) सबकुछ (D) क्रोध

(ii) _____ मनुष्य की सृष्टि है।

(A) समाज (B) व्यक्ति

(C) साहित्य (D) जीवन

(iii) जीवन का उद्देश्य _____ है।

(A) स्नेह (B) जीवन

(C) घृणा (D) आनन्द

(iv) साहित्य में _____ रस कहे गये हैं?

(A) पाँच (B) चार

(C) आठ (D) नौ

(v) सत्य से आत्मा का संबंध _____ प्रकार से है।

(A) आठ (B) तीन

(C) एक (D) चार

(vi) 'आनन्द का संबंध _____ से है।

(A) पुस्तक (B) मनोभावों

(C) समाज (D) व्यक्ति

(vii) _____एक प्रकार का आत्म समर्पण है?

(A) क्रोध (B) विह्वलता

(C) स्नेह (D) घृणा

(viii) _____ के लिए संयम की आवश्यकता होती है।

(A) आत्मविकास (B) स्वच्छता

(C) व्यवहार कुशलता (D) खेल

(ix) मनुष्य स्वभाव से _____ है।

(A) प्रेममय (B) देवतुल्य

(C) स्नेहानुभाजन (D) सर्वप्रिय

(x)_____साहित्य का आदर्श उसका त्याग और उत्सर्ग है।

(A) पाश्चात्य (B) देशीय

(C) प्रान्तीय (D) भारतीय

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक - दो वाक्यों में दीजिए।

(i) जीवन क्यों अनन्त और अगम्य है?

(ii) साहित्य किसके सामने जवाबदेह है?

(iii) मनुष्य जीवनपर्यन्त किसकी खोज में लगा रहता है?

(iv) ऐश्वर्य के भोग में क्या छिपा रहता है?

(v) साहित्य हर एक रस में क्या खोजता है?

(vi) आत्मा के साथ सत्य के कौन-कौन से तीन संबंध हैं?

(vii) जिज्ञासा का संबंध किससे है?

(viii) जिसकी आत्मा विशाल है वह कैसा व्यक्ति है?

(ix) कौन - सी प्रवृत्तियाँ दूषित हैं?

(x) साहित्य मनोविकारों के रहस्य को खोजकर क्या करता है?

(xi) किस पर हमारे बड़े-बड़े धर्म स्थिर हैं?

(xii) कौन विशाल हृदय के मनुष्य थे?

(xiii) मनुष्य कब अपने देवत्व को खो बैठता है?

(xiv) साहित्य किसका स्रष्टा है?

(xv) व्यास और वाल्मीकि के आदर्शों ने क्या किया है?

(xvi) किसी राष्ट्र की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति क्या है?

(xvii) साहित्यकार को कैसा होना चाहिए?

(xviii) साहित्य का उत्थान किसका उत्थान है?

(xix) अमर साहित्य के रचनाकार वाल्मीकि और व्यास किस प्रकार के व्यक्ति थे?

(xx) निबन्धकार की ईश्वर से क्या प्रार्थना है?

३. दो-तीन वाक्यों में उत्तर दीजिए?

(i) साहित्य मनुष्य के सामने क्यों जवाबदेह है?

(ii) ऐश्वर्य या योग के आनन्द में ग्लानि क्यों छिपी रहती है?

(iii) हम 'कैसी रचना को साहित्य नहीं कहेंगे?

(iv) पशुओं का जीवन कैसा होता है?

(v) धर्माचार्यों ने मानव जीवन की कथाएँ क्यों रचीं?

(vi) सच्चे साहित्यकार को कैसा होना चाहिए?

(vii) युरोप का साहित्य कैसा है?

४. निम्न प्रश्नों के उत्तर लगभग दस-बारह वाक्यों में दीजिए।

(i) जीवन अगम्य और साहित्य सुगम क्यों है?

(ii) मनुष्य को आनन्द कहाँ-कहाँ मिलता है?

(iii) साहित्य हर एक रस में सुंदर को कैसे खोजता है?

(iv) लेखक ने साहित्य में श्रृंगार रस को ही एक मात्र रस क्यों माना है?

(v) सत्य से आत्मा के तीन संबंधों को समझाइए।

(vi) हमें बाधक प्रवृत्तियों पर रोक लगाने की आवश्यकता क्यों है?

(vii) साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं हृदय की वस्तु है।-ऐसा लेखक ने क्यों कहा है?

(viii) हमारे धर्माचार्यों ने मानव जीवन की कथाएँ क्यों रचीं?

(ix) साहित्य को निबंधकार जादू की लकड़ी क्यों मानते हैं?

(x) साहित्य अपने देश काल से कैसे प्रभावित होता है?

(xi) जीवन में साहित्य की उपयोगिता के विषय में कभी-कभी संदेह क्यों किया जाता है?

(xii) साहित्यकारों को क्यों आदर्शवादी होना चाहिए?

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार का जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में हुआ था। उन्हें महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। हिन्दी कथा साहित्य को इनका अवदान व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। हिन्दी साहित्य जगत में मनोवैज्ञानिक कथा धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी इन्हें प्राप्त है। 'परख' और 'सुनीता' के बाद 'त्यागपत्र' ने इन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में प्रभूत प्रतिष्ठा दिलाई। कथाकार होने के साथ-साथ एक गंभीर चिन्तक के रूप में भी इन्हें प्रतिष्ठा मिली। इन्होंने समाज, राजनीति, अर्थनीति एवं दर्शन से सम्बन्धित गहन प्रश्नों को सुलझाने की सफल चेष्टा की है। गांधीवादी चिन्तन दृष्टि को ने अपने उपन्यास और कहानियों से भी जोड़ा है। इन्हें साहित्य अकादमी तथा भारत-भारती सम्मान भी मिला। भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित हुए।

रचनाएँ-इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- परख, सुनीता, त्यागपत्र, खेल पाजेब, नीलम देश की राजकन्या, अपना अपना भाग्य, तत्सत आदि कहानियाँ हैं।

बाजार-दर्शन

एक बार की बात कहता हूँ। मित्र बाजार गये तो थे कोई एक मामूली चीज लेने, पर लौटे तो एकदम बहुत-से बण्डल पास थे।

मैंने कहा- ''यह क्या?''

बोले-''यह जो साथ थीं।''

उनका आशय था कि यह पत्नी की महिमा है। उस महिमा का मैं कायल हूँ। आदि काल से इस विषय में पति से पत्नी की ही प्रमुखता प्रमाणित है और यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं, स्त्रीत्व का प्रश्न है। स्त्री माया न जोड़े, तो क्या मैं जोडूँ? फिर भी सच सच है और वह यह कि इस बात में पत्नी की ओट ली जाती है। मूल में एक और तत्त्व की महिमा सविशेष है। वह तत्त्व है मनोवेग अर्थात् पैसे की गरमी या एनर्जी।

पैसा पावर है। पर उसके सबूत में आसपास माल-टाल न जमा हो तो क्या वह खाक पावर है! पैसे को देखने के लिए बैंक-हिसाब देखिये, पर माल-असबाब मकान-कोठी तो अनदेखे भी दीखते हैं। पैसे की उस 'पर्चेजिंग पावर' के प्रयोग में ही पावर का रस है।

लेकिन नहीं। लोग संयमी भी होते हैं। फिजूल सामान को फिजूल समझते हैं। वे पैसा बहाते नहीं हैं और बुद्धिमान् होते हैं। बुद्धि और संयमपूर्वक वह पैसे को जोड़ते हैं, जोड़ते जाते हैं। वह पैसे की पावर को इतना निश्चय समझते हैं कि उसके प्रयोग की परीक्षा उन्हें दरकार नहीं है। बस खुद पैसे के जुड़ा होने पर उनका मन गर्व से भरा फूला रहता है।

मैंने कहा-'यह कितना सामान ले आये!''

मित्र ने सामने मनीबेग फैला दिया, कहा- 'यह देखिये। सब उड़ गया, अब जो रेल-टिकट के लिए भी बचा हो!''

मैंने तब तय माना कि और पैसा होता तो और सामान आता। वह सामान जरूरत की तरफ देखकर नहीं आया, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के अनुपात में आया है।

लेकिन ठहरिये। इस सिलसिले से एक और भी महत्त्व का तत्त्व है, जिसे नहीं भूलना चाहिए। उसका भी इस करतब में बहुत-कुछ हाथ है। वह महत्व है, बाजार।

मैंने कहा-''यह इतना कुछ नाहक ले आये!''

मित्र बोले-''कुछ न पूछो। बाजार है कि शैतान का जाल है? ऐसा सजा-सजाकर माल रखते हैं कि बेहया ही हो जो न फँसे।''

मैंने मन में कहा, ठीक। बाजार आमन्त्रित करता है कि आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज है। अजी आओ भी।

इस आमन्त्रण में यह खूबी है कि आग्रह नहीं है। आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाजार का आमन्त्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव। चौक बाजार में खड़े होकर आदमी को लगने लगता है कि उसके अपने पास काफी नहीं है और चाहिए, और चाहिए। मेरे यहाँ कितना परिमित है और यहाँ कितना अतुलित है। ओह!

कोई अपने को न जाने तो बाजार का यह चौक उसे कामना से विकल बना छोड़े। विकल क्यों, पागल। असन्तोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए यह बेकार बना डाल सकता है।

एक और मित्र की बात है। वह दोपहर के पहले के गये-गये बाजार से कहीं शाम को वापिस आये। आये तो खाली हाथ?

मैंने पूछा-''कहाँ रहे?''

बोले-''बाजार देखते रहे।''

मैंने कहा-''बाजार का देखते क्या रहे?''

बोले- ''क्यों? बाजार-''

तब मैंने कहा-''लाये तो कुछ नहीं!''

बोले-''हाँ। पर यह समझ न आता था कि न लूँ तो क्या? सभी कुछ तो लेने को जी होता था। कुछ लेने का मतलब था शेष सब-कुछ को छोड़ देना। पर मैं कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता था। इससे मैं कुछ भी नहीं ले सका।'' मैंने, कहा-खूब!

पर मित्र की बात ठीक थी। अगर ठीक पता नहीं है कि क्या चाहते हो तो सब ओर की चाह तुम्हें घेर लेगी और तब परिणाम त्रास ही होगा, गति नहीं होगी, न कर्म।

बाजार में एक जादू है। वह जादू आँख की राह काम करता है। वह रूप का जादू है। पर जैसे चुम्बक का जादू लोहे पर ही चलता है, वैसे ही इस जादू की भी मर्यादा है। जेब भरी हो और मन खाली हो, ऐसी हालत में जादू का असर खूब होता है। जेब खाली पर मन भरा न हो, तो भी जादू चल जाएगा। मन खाली है तो बाजार की अनेकानेक चीजों का निमन्त्रण उस तक पहुँच जाएगा। कहीं हुई उस वक्त जेब भरी तब तो फिर वह मन किसकी मानने वाला है! मालूम होता है यह भी लूँ, वह भी लूँ। सभी सामान जरूरी और आराम को बढ़ाने वाला मालूम होता है। पर यह सब जादू का असर है। जादू की सवारी उतरी कि पता चलता है कि फैन्सी चीजों की बहुतायत आराम में मदद नहीं देती, बल्कि खलल ही डालती है। थोड़ी देर को स्वाभिमान को

जरूर सेंक मिल जाता है। पर इससे अभिमान की गिल्टी को और खुराक ही मिलती है। जकड़ रेशमी डोरी की हो तो रेशम के स्पर्श के मुलायम के कारण क्या वह कम जकड़ होगी?

पर उस जादू की जकड़ से बचने का एक सीधा-सा उपाय है। वह यह कि बाजार जाओ तो मन खाली न हो। मन खाली हो, तब बाजार न जाओ। कहते हैं लू में जाना हो तो पानी पीकर जाना चाहिए। पानी भीतर हो, लू का लूपन व्यर्थ हो जाता है। मन लक्ष्य में भरा हो जो बाजार भी फैला-का फैला रह जाएगा। तब वह घाव बिलकुल नहीं दे सकेगा, बल्कि कुछ आनन्द ही देगा। तब बाजार तुमसे कृतार्थ होगा, क्योंकि तुम कुछ-न-कुछ सच्चा लाभ उसे दोगे। बाजार की असली कृतार्थता है आवश्यकता के समय काम आना।

यहाँ एक अन्तर चीन्ह लेना जरूरी है। मन खाली नहीं रहना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वह मन बन्द रहना चाहिए। जो बन्द हो जाएगा, वह शून्य हो जाएगा। शून्य होने का अधिकार बस परमात्मा का है जो सनातन भाव से सम्पूर्ण है। शेष सब अपूर्ण है। इससे मन बन्द नहीं रह सकता। सब इच्छाओं का निरोध कर लोगे, यह झूठ है। और अगर 'इच्छानिरोधस्तपः' का ऐसा ही नकारात्मक अर्थ हो तो वह तप झूठ है। वैसे तप की राह रेगिस्तान को जाती होगी, मोक्ष की राह वह नहीं है। डाट देकर मन को बन्द कर रखना पड़ता है। लोभ का यह जीतना नहीं है कि जहाँ लोभ हाता है, यानी मन में, वहाँ नकार हो। यह तो लोभ की ही जीत है और आदमी की हार। आँख अपनी फोड़ डाली, तब लोभनीय के दर्शन से बचे तो क्या हुआ? ऐसे क्या लोभ मिट जाएगा? और कौन कहता है कि आँख फूटने पर रूप दिखना बंद हो जाएगा? क्या आँख बन्द करके ही हम सपने नहीं लेते हैं? और वे सपने क्या चैन-भंग नहीं करते हैं? इससे मन को बन्द कर डालने की कोशिश तो अच्छी नहीं। वह अकारथ है। यह तो हठवाला योग है। शायद हठ-ही-हठ है, योग नहीं है।

इससे मन कृश भले हो जाए और पीला और अशक्त जैसे विद्वान का ज्ञान। वह मुक्त ऐसे नहीं होता। इससे वह व्यापक की जगह संकीर्ण और विराट् की जगह क्षुद्र होता है। इसलिए उसका रोम-रोम मूँदकर बन्द तो मन को करना नहीं चाहिए। वह मन पूर्ण कब है। हम में पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते? अपूर्ण हैं, इसी से हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हम में गहरा करता है। सच्चा कर्म सदा इस अपूर्णता की स्वीकृति के साथ होता है। अत: उपाय कोई वही हो सकता है जो बलात् मन को रोकने को न कहे, जो मन की भी इसलिए सुने क्योंकि वह अप्रयोजनीय रूप में हमें नहीं प्राप्त हुआ है। हाँ, मनमानेपन की छूट मन के न हो, क्योंकि वह अखिल का अंग है, खुद कुछ नहीं है।

पड़ोस में एक महानुभव रहते हैं जिनको लोग भगतजी कहते हैं। चूरन बेचते हैं। यह काम करते जाने उन्हें कितने बरस हो गये हैं। लेकिन किसी एक भी दिन चूरन से उन्होंने छ: आने पैसे से ज्यादे नहीं कमाये। चूरन उनका आसपास सरनाम है और खुद खूब लोकप्रिय हैं। कहीं व्यवसाय का गुर पकड़ लेते और उस पर चलते तो आज खुशहाल क्या मालमाल होते! क्या कुछ उनके पास न होता! इधर दस वर्षों से मैं देख रहा हूँ, उनका चूरन हाथों-हाथ जाता है। पर वह न उसे थोक में देते हैं, न व्यापारियों को बेचते हैं। पेशगी आर्डर कोई नहीं लेते। बँधे वक्त पर अपनी चूरन की पेटी लेकर घर से बाहर हुए नहीं कि देखते-देखते छ: आने की कमाई उनकी हो जाती है। लोग उनका चूरन लेने को उत्सुक जो रहते हैं। चूरन से भी अधिक शायद वह भगतजी के प्रति अपनी सद्भावना का श्रेय देने को उत्सुक रहते हैं। पर छ: आने पूरे हुए नहीं कि भगतजी बाकी चूरन बालकों को मुफ्त बाँट देते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ है कि कोई उन्हें पच्चीसवाँ पैसा भी दे सके! कभी चूरन में लापरवाही नहीं हुई है और कभी रोग होता भी मैंने उन्हें नहीं देखा है।

और तो नहीं, लेकिन इतना मुझे निश्चय मालूम होता है कि इन चूरनवाले भगतजी पर बाजार का जादू नहीं चल सकता।

कहीं आप भूल न कर बैठियेगा। इन पंक्तियों को लिखने वाला मैं चूरन नहीं बेचता हूँ। जी नहीं, ऐसी हलकी बात भी न सोचियेगा। यह समझियेगा कि लेख के किसी भी मान्य पाठक से उस चूरन वाले को श्रेष्ठ बताने की मैं हिम्मत कर सकता हूँ। क्या जाने उस भोले आदमी को अक्षर-ज्ञान तक भी है या नहीं और बड़ी बातें तो उसे मालूम क्या होंगी और हम-आप न जाने कितनी बड़ी-बड़ी बातें जानते हैं। इससे यह तो हो सकता है कि वह चूरन वाला भगत हम लोगों के सामने एकदम नाचीज आदमी हो। लेकिन आप पाठकों की विद्वान् श्रेणी का सदस्य होकर भी मैं यह स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ कि उस अपदार्थ प्राणी को वह प्राप्त है जो हम में से बहुत कम को शायद प्राप्त है। उस पर बाजार का जादू वार नहीं कर पाता। माल बिछा रहता है और उसका मन अडिग रहता है। पैसा उससे आगे होकर भीख तक माँगता है कि मुझे लो। लेकिन उसके मन में पैसे पर दया नहीं समाती। वह निर्मम व्यक्ति पैसे को अपने आहत गर्व में बिलखता ही छोड़ देता है। ऐसे आदमी के आगे क्या पैसे की व्यंग्य-शक्ति कुछ भी चलती होगी? क्या वह शक्ति कुण्ठित रहकर सलज्ज ही न हो जाती होगी?

पैसे की व्यंग्य-शक्ति की सुनिये। वह दारूण है। मैं पैदल चल रहा हूँ कि पास ही धूल उड़ाती निकल गयी मोटर। वह क्या निकली मेरे कलेजे को कौंधती एक कठिन व्यंग्य की लीक ही आर-से-पार हो गयी। जैसे किसी ने आँखों में उँगली देकर दिखा दिया हो कि देखो, उसका नाम है मोटर और तुम उससे वंचित हो! यह मुझे अपनी ऐसी विडम्बना मालूम होती है कि बस पूछिये नहीं। मैं सोचने को हो आता हूँ कि हाय, ये ही माँ-बाप रह गये थे

जिनके यहाँ मैं जन्म लेने को था! क्यों न मैं मोटरवालों के यहाँ हुआ! उस व्यंग्य में इतनी शक्ति है कि जरा में मुझे अपनी सगों के प्रति कृतघ्न कर सकती है।

लेकिन क्या लोकवैभव की यह व्यंग्य-शक्ति उस चूरन वाले अकिंचित्कर मनुष्य के आगे चूर-चूर होकर ही नहीं रह जाती? चूर-चूर क्यों, कहो पानी-पानी।

तो वह क्या बल है जो इस तीखे व्यंग्य के आगे अजेय ही नहीं रहता, बल्कि मानो उस व्यंग्य की क्रूरता को ही पिघला देता है?

उस बल को नाम जो दो, पर वह निश्चय उस तल की वस्तु नहीं है जहाँ पर संसारी वैभव फलता-फूलता है। वह कुछ अपर जाति का तत्त्व है। लोग स्पिरिचुअल कहते हैं, आत्मिक, धार्मिक, नैतिक कहते हैं। मुझे योग्यता नहीं कि मैं उन शब्दों में अन्तर देखूँ और प्रतिपादन करूँ। मुझे शब्द से सरोकार नहीं। मैं विद्वान् नहीं कि शब्दों पर अटकूँ। लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है, वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाए तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की ओर झुकता है। वह अलबता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है।

एक बार चूरन वाले भगतजी बाजार चौक में दीख गये। मुझे देखते ही उन्होंने जय-जयराम किया। मैंने भी जयराम कहा। उनकी आँखें बन्द नहीं थीं और न उस समय वह बाजार को किसी भाँति कोस रहे मालूम होते थे। राह में बहुत लोग, बहुत बालक मिले जो भगतजी द्वारा पहचाने जाने के इच्छुक थे। भगतजी ने सबको ही हँसकर पहचाना। सबका अभिवादन लिया और सबको

अभिवादन दिया। इससे तनिक भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि चौक-बाजार में होकर उनकी आँखें किसी से भी कम खुली थीं। लेकिन भौचक्के हो रहने की लाचारी उन्हें नहीं थी। व्यवहार में पशोपेश उन्हें नहीं था और खोये से खड़े नहीं वह रह जाते थे। भाँति-भाँति के बढ़िया माल से चौक भरा पड़ा है। उस सबके प्रति अप्रीति इस भगत के मन में नहीं है। जैसे उस समूचे माल के प्रति भी उनके मन में आशीर्वाद हो सकता है। विद्रोह नहीं, प्रसन्नता ही भीतर है, क्योंकि कोई रिक्त भीतर नहीं है। देखता हूँ कि खुली आँख, तुष्ट और मग्न, वह चौक-बाजार में से चलते चले जाते हैं। राह में बड़े-बड़े फैन्सी स्टोर पड़ते हैं, पर पड़े रह जाते हैं। कहीं भगत नहीं रुकते। रुकते हैं तो एक छोटी पन्सारी की दुकान पर रूकते हैं। वहाँ दो-चार अपने काम की चीज लीं और चले आते हैं। बाजार से हठपूर्वक विमुखता उनमें नहीं है, लेकिन अगर उन्हें जीरा और काला नमक चाहिए तो सारे चौक-बाजार की सत्ता उनके लिए तभी तक है, तभी तक उपयोगी है, जब तक वहाँ जीरा मिलता है। जरूरत-भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं बराबर हो जाता है। वह जानते हैं कि जो उन्हें चाहिए वह है जीरा-नमक। बस इस निश्चित प्रतीति के बल पर शेष चाँदनी चौक का आमनत्रण उन पर व्यर्थ होकर बिखर रहता है। चौक की चाँदनी दायें-बायें भूखी-की-भूखी फैली रह जाती है, क्योंकि भगतजी को जीरा चाहिए वह तो कोने वाली पन्सारी की दुकान से मिल जाता है और वहाँ से सहज भाव में ले लिया गया है इसके आगे आस-पास अगर चाँदनी बिछी रहती है तो बड़ी खुशी से बिछी रहे, भगतजी उस बेचारी का कल्याण ही चाहते हैं।

यहाँ मुझे ज्ञात होता है कि बाजार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति-

शैतानी शक्ति, व्यंग की शक्ति ही बाजार को देते हैं। न तो वे बाजार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाजार को सच्चा लाभ दे सकते हैं। वे लोग बाजार का बाजारूपन बढ़ाते हैं। जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी। इस सद्भाव के ह्रास पर आदमी आपस में भाई-भाई और सुहृद और पड़ोसी फिर रह ही नहीं जाते हैं और आपस में कोरे गाहक और बेचक की तरह व्यवहार करते हैं। मानो दोनों एक-दूसरे को ठगने की घात में हों। एक की हानि में दूसरे को अपना लाभ दीखता है और यह बाजार का, बल्कि इतिहास का, सत्य माना जाता है। ऐसे बाजार को बीच में लेकर लोगों में आवश्यकताओं का आदान-प्रदान नहीं होता, बल्कि शोषण होने लगता है। तब कपट सफल होता है, निष्कपट शिकार होता है। ऐसे बाजार मानवता के लिए विडम्बना हैं और जो ऐसे बाजार का पोषण करता है, जो उसका शास्त्र बना हुआ है, वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा है। वह मायावी शास्त्र है। वह अर्थ-शास्त्र अनीति-शास्त्र है।

यह पाठ:

'बाजार दर्शन' जैनेन्द्र कुमार का एक महत्त्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध में खास बात यह है कि इसमें जहाँ गहरी वैचारिकता है वहाँ साहित्य सुलभ लालित्य भी है। इन दिनों पिछले एकडेढ़ दशक से उपभोक्तावाद और बाजारवाद पर गहरी चर्चा हो रही है। इस बाजारवाद से लेखक कई दशक पहले से ही परेशान थे। यह निबंध आज के बाजारवाद की मूल अन्तर्वस्तु को समझने में सहायक है। अपनी कोटि का यह बेजोड़ निबन्ध है। वे अपने परिचितों, मित्रों के अनुभव के माध्यम से यह बताते हैं कि किस तरह बाजार की जादुई ताकत हमें अपना गुलाम बनाती है। यदि हमें अपनी जरूरतों का पता है तो हम बाजार से लाभ उठा सकते हैं। यदि हम अपनी जरूरतों को न समझकर

बाजार की तड़क-भड़क में फँस गये तो अपने लिए केवल असन्तोष, तृष्णा, ईर्ष्या ही बाजार से बटोरकर लाएँगे। इससे हमारा पूरा का पूरा जीवन खतरे में पड़ सकता है। इसी भाव को भाँति-भाँति से उदाहरण देकर लेखक ने समझाने की सफल चेष्टा की है।

शब्दार्थ- पर्चेजिंग पावर-खरीदने की शक्ति, आसबाव-सामान, दरकार-जरूरत, परिमित-सीमित, अतुलित-जिसकी तुलना न की जा सके, पेशगी-अग्रिम राशि, नाचीज- अपदार्थ-जिसका अस्तित्व न हो, दारुण-भयंकर, अकिंचित्कार-अर्थहीन, स्पृहा-इच्छा।

प्रश्न और अभ्यास :

१. सही शब्द छाँट कर खाली स्थान भरिए-

(i) उनका _____ था कि यह पत्नी की महिमा है।

(A) आशय (B) उद्देश्य

(C) सोच (D) विचार

(ii) _____ पावर है।

(A) घर (B) बच्चे

(C) सोना (D) पैसा

(iii) वे _____ सामान को फिजूल समझते हैं?

(A) घर के (B) अपने

(C) फिजूल (D) पराये

(iv) बाजार _____ करता है।

(A) अमान्त्रित (B) खेल

(C) सजा (D) प्रताड़ित

(v) बाजार में एक _____ है।

(A) आकर्षण (B) जादू

(C) लोभ (D) लगाव

(vi) यहाँ एक अन्तर _____ लेना जरूरी है।

(A) देख (B) परख

(C) चिह्न (D) समझ

(vii) देखते-देखते उनकी _____ आने की कमाई होजाती थी।

(A) पाँच (B) आठ

(C) दो (D) छः

(viii) पैसा उसके आगे होकर _____ तक माँगता है।

(A) भीख (B) प्राण

(C) दया (D) जीवन

(ix) चाँदनीचौक का ____ उन पर व्यर्थ होकर बिखर रहता है।

(A) ग्रहण (B) आमन्त्रण

(C) प्रवर्तन (D) सम्बोधन

(x) चूरनवाले भगत जी पर _____ जादू नहीं चल सकता।

(A) अपनों का (B) घर का

(C) पत्नीका (D) बाजार का

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-दो वाक्य में दीजिए।

(i) पावर का रस किसमें है?

(ii) बाजार आमन्त्रित कर क्या कहता है?

(iii) ऊँचे बाजार का आमन्त्रण कैसे होता है?

(iv) अपने को न जानने पर बाजार मनुष्य को कैसा बना देता है?

(v) बाजार का जादू किस राह से काम करता है?

(vi) बाजार रूप का जादू क्यों है?

(vii) जादू की जकड़ से बचने का सीधा उपाय क्या है?

(viii) शून्य होने का अधिकार किसका है?

(ix) सच्चा ज्ञान क्या करता है?

(x) मनमानेपन की छूट मन को क्यों नहीं होना चाहिए।

(xi) बाजार को सार्थकता कौन देता है?

(xii) लेखक के मित्र ने बाजार को शैतान का जाल क्यों कहा?

३. तीन वाक्यों में उत्तर दीजिए।

(i) लेखक पत्नी की महिमा के कायल क्यों हैं?

(ii) संयमी व्यक्ति को लेखक बुद्धिमान क्यों मानते हैं?

(iii) बाजार के आमन्त्रण पर चौक में आदमी को कैसा लगता है?

(iv) यदि हमें बाजार की चाह घेर लेगी तो क्या होगा?

(v) जादू की सवारी से उतरते ही कैसा लगने लगता है?

४. निम्न प्रश्नों के उत्तर लगभग दस-बारह वाक्यों में दीजिए।

(i) बाजार का जादू चढ़ने और उतरने पर मनुष्य पर क्या-क्या असर पड़ता है?

(ii) बाजार में भगत जी के व्यक्तित्व का कौन-सा सशक्त पहलू उभर कर आता है?

(iii) ऊँचे बाजार के आमन्त्रण से क्यों चाह जगती है?

(iv) बाजार को लेखक ने जादू क्यों कहा है?

(v) खाली मन पर बाजार का प्रभाव अधिक क्यों होता है?

(vi) जादू की जकड़ से बचने का क्या उपाय है?

(vii) लेखक ने पैसे की व्यंग्य-शक्ति को दारूण क्यों कहा है?

(viii) निर्बल ही धन की ओर क्यों झुकता है?

(ix) वह कौन-सा बल है जो व्यंग्य की क्रूरता को पिघला देता है?

(x) अपने पर्चेजिंग पावर' के गर्व में मनुष्य क्या कर डालता है?

रामधारी सिंह "दिनकर"

(२३-०९-१९०८-२५-४-१९७४)

दिनकर जी का जन्म बिहार के बेगुसराय जिले में हुआ था। वे कई भाषाओं के जानकार थे। हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाएँ वे अच्छी तरह लिख पढ़ लेते थे। इन्हें बिहार के शिक्षा विभाग में सहायक रजिस्ट्रार के रूप में नियुक्ति मिली थी। कुछ दिनों बाद वे बिहार सरकार के प्रचार विभाग में आ गये फिर जन संपर्क विभाग में निर्देशक बने। कई दिनों तक तो वे महाविद्यालय में अध्यापना का काम करते रहे। विभागाध्यक्ष भी बने। १९५२ में राज्यसभा के सदस्य चुने गये। सन् १९६४ में भागलपुर विश्व विद्यालय में कुलपति भी बने। दिनकर जी भारत सरकार के हिन्दी परामर्शदाता नियुक्त हुए। जीवन भर इनकी साहित्यिक सेवा चलती रही। इनकी काव्य-भाषा ओजस्विनी एवं प्रवाहमयी थी।

दिनकर की प्रमुख कृतियाँ-कुरुक्षेत्र, हुँकार, रेणुका, रश्मिरथी, नील कुसुम, परशुराम की प्रतीक्षा, उर्वशी, हारे को हरिनाम, संस्कृति के चार अध्याय, अर्द्धनारीश्वर, रेती के फूल, मिट्टी की ओर, शुद्ध कविता की खोज, बेणुवन आदि हैं।

ईर्ष्या : तू न गयी मेरे मन से

रामधारी सिंह 'दिनकर'

मेरे घर के दाहिने एक वकील रहते हैं, जो खाने-पीने में अच्छे हैं, दोस्तों को खिलाते हैं और सभा-सोसाइटियों में भी काफी भाग लेते हैं। बाल-बच्चों से पूरा परिवार। नौकर भी सुख देनेवाले और पत्नी भी अत्यन्त मृदुभाषिणी। भला एक सुखी मनुष्य को और क्या चाहिए?

मगर, वे सुखी नहीं हैं। उनके भीतर कौन-सा दाह है, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। दरअसल उनकी बगल में जो बीमा एजेण्ट हैं, उनके विभव की वृद्धि से वकील साहब का कलेजा जलता रहता है। वकील साहब को भगवान ने जो कुछ दे रखा है, वह उनके लिए काफी नहीं दीखता। वह इस चिन्ता में भुने जा रहे हैं कि काश, एजेण्ट की मोटर, उसकी मासिक आय और उसकी तड़क-भड़क भी मेरी हुई होती।

ईर्ष्या का यही अनोखा वरदान है। जिस मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या घर बना लेती है, वह उन चीजों से आनन्द नहीं उठाता, जो उसके पास मौजूद हैं, बल्कि उन वस्तुओं से दु:ख उठाता है,जो दूसरों के पास हैं। वह अपनी तुलना दूसरों के साथ करता है और इस तुलना में अपने पक्ष के सभी अभाव उसके हृदय पर दंश मारते रहते हैं । दंश के इस दाह को भोगना कोई अच्छी बात नहीं है। मगर ईर्ष्यालु मनुष्य करे भी तो क्या? आदत से लाचार होकर उसे यह वेदना भोगनी पड़ती है।

एक उपवन को पाकर भगवान् को धन्यवाद देते हुए उसका आनन्द नहीं लेना, और बराबर इस चिन्ता में निमग्न रहना कि इससे भी बड़ा उपवन

क्यों नहीं मिला, एक ऐसा दोष है जिससे ईर्ष्यालु व्यक्ति का चरित्र भी भयंकर हो उठता है। अपने अभाव पर दिन-रात सोचते-सोचते वह सृष्टि की प्रक्रिया को भूलकर विनाश में लग जाता है और अपनी उन्नति के लिए उधम करना छोड़कर वह दूसरों को हानि पहुँचाने को ही अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य समझने लगता है।

ईर्ष्या की बड़ी बेटी का नाम निन्दा है। जो व्यक्ति ईष्यालु होता है, वही व्यक्ति बुरे किस्म का निन्दक भी होता है। दूसरों की निन्दा वह इसलिए करता है कि इस प्रकार दूसरे लोग जनता अथवा मित्रों की आँखों से गिर जाएँगे और तब जो स्थान होगा, उस पर अनायास मैं ही बिठा दिया जाऊँगा।

मगर, ऐसा न आज तक हुआ है और न आगे होगा। दूसरों को गिराने की कोशिश तो अपने को बढ़ाने की कोशिश नहीं कही जा सकती। एक बात और है कि संसार में कोई भी मनुष्य निन्दा से नहीं गिरता। उसके पतन का कारण अपने ही भीतर के सद्गुणों का ह्रास होता है। इसी प्रकार कोई भी मनुष्य दूसरों की निन्दा करने से अपनी उन्नति नहीं कर सकता। उन्नति तो उसकी तभी होगी, जब वह अपने चरित्र को निर्मल बनाये तथा अपने गुणों का विकास करे।

ईर्ष्या का काम जलाना है, मगर, सबसे पहले वह उसी को जलाती है, जिसके हृदय में उसका जन्म होता है। आप भी ऐसे बहुत - से लोगों को जानते होंगे जो ईर्ष्या और द्वेष की साकार मूर्ति हैं और जो बराबर इस फिक्र में ही रहते हैं कि कहाँ सुननेवाले मिलें कि अपने दिल का गुबार निकालने का मौका मिले। श्रोता मिलते ही उनका ग्रामोफोन बजने लगता है और वे बड़ी ही होशियारी के साथ एक-एक काण्ड इस ढंग से सुनाते हैं, मानो, विश्व-कल्याण को छोड़कर उनका और कोई ध्येय नहीं हो । मगर, जरा उनके अपने

इतिहास को भी देखिये और समझने की कोशिश कीजिए कि जब से उन्होंने इस सुकर्म का आरंभ किया है, तब से वे अपने क्षेत्र में आगे बढ़े हैं या पीछे हटे हैं। यह भी कि अगर वे निन्दा करने के समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते तो आज उनका स्थान कहाँ होता। 'चिन्ता' को लोग चिता कहते हैं। जिसे किसी प्रचण्ड चिन्ता ने पकड लिया है, उस बेचारे की जिन्दगी ही खराब हो जाती है। किन्तु ईर्ष्या शायद चिन्ता से भी बढ़तर चीज है, क्योंकि वह मनुष्य के मौलिक गुणों को ही कुंठित बना डालती है। मृत्यु, शायद, फिर भी श्रेष्ठ है बनिस्पत इसके कि हमें अपने गुणों को कुंठित बनाकर जीना पड़े। चिन्ता-दग्ध मनुष्य समाज की दया का पात्र है। किन्तु ईर्ष्या से जला भुना आदमी जहर की एक चलती-फिरती गठरी के समान है जो हर जगह वायु को दूषित करती फिरती है।

ईर्ष्या मनुष्य का चारित्रिक दोष ही नहीं है, प्रत्युत, इससे मनुष्य के आनन्द में भी बाधा पड़ती है। जब भी मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या का उदय होता है, सामने का सूर्य उसे मद्धिम-सा दीखने लगता है, पक्षियों के गीत में जादू नहीं रह जाता और फूल तो ऐसे हो जाते हैं, मानो, वे देखने के योग्य नहीं हों।

आप कहेंगे कि निन्दा के बाण से अपने प्रतिद्वन्द्वियों को बेधकर हँसने में एक आनन्द है और यह आनन्द ईर्ष्यालु व्यक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार है। मगर यह हॅसी मनुष्य की नहीं, राक्षस की हँसी होती है और यह आनन्द भी दैत्यों का आनन्द होता है।

ईर्ष्या का संबंध प्रतिद्वन्द्विता से होता है, क्योंकि भिखमंगा करोड़पति से ईर्ष्या नहीं करता। वह एक ऐसी बात है जो ईर्ष्या के पक्ष में भी पड़ सकती है, क्योंकि प्रतिद्वन्द्विता से भी मनुष्य का विकास होता है। किन्तु, अगर आप संसार - व्यापी सुयश चाहते हैं तो आप, रसेल क मतानुसार, शायद, नेपोलियन

से स्पर्धा करेंगे। मगर याद रखिये कि नेपोलियन भी सीजर से स्पर्धा करता था और सीजर सिकन्दर से तथा सिकन्दर हरकूलस से, जिस हरकूलस के बारे में इतिहासकारों का यह मत है कि वह कभी पैदा ही नहीं हुआ।

ईर्ष्या का एक पक्ष, सचमुच ही, लाभदायक हो सकता है, जिसके अधीन हर आदमी, हर जाति और हर दल अपने को अपने प्रतिद्वन्द्वी का समकक्ष बनाना चाहता है। किन्तु वह तभी संभव है, जब कि ईर्ष्या से जो प्रेरणा आती हो, वह रचनात्मक हो। अक्सर तो ऐसा ही होता कि ईर्ष्यालु व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि कोई चीज है, जो उनके भीतर नहीं है, कोई वस्तु है, दूसरों के पास है। किन्तु वह यह नहीं समझ पाता है कि इस वस्तु को प्राप्त कैसे करना चाहिए और गुस्से में आकर वह अपने किसी पड़ोसी, मित्र या समकालीन व्यक्ति को अपने से श्रेष्ठ मानकर उससे जलने लगता है, जबकि वे लोग भी अपने-आपसे, शायद, वैसे ही असंतुष्ट हों।

आपने यह भी देखा होगा कि शरीफ लोग, अक्सर, यह सोचते हुए अपना सिर खुजलाया करते हैं कि फलाँ आदमी मुझसे क्यों जलता है, मैंने तो उसका कुछ नहीं बिगाड़ा और अमुक व्यक्ति इस कदर मेरी निन्दा में क्यों लगा हुआ है? सच तो यह है कि मैंने सबसे अधिक भलाई उसी की की है।

वे सोचते हैं-मैं तो पाक-साफ हूँ, मुझमें किसी भी व्यक्ति के लिए दुर्भावना नहीं है, बल्कि, अपने दुश्मनों की भी मैं भलाई ही सोचा करता हूँ। फिर ये लोग मेरे पीछे क्यों पड़े हुए हैं? मुझमें कौन-सा वह ऐब है, जिसे दूर करके मैं इन दोस्तों को चुप कर सकता हूँ?

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जब इस तजरुबे से होकर गुजरे तब उन्होंने एक सूत्र कहा, 'तुम्हारी निन्दा वही करेगा, जिसकी तुमने भलाई की है और नीत्से जब इस कूचे से होकर निकला, तब उसने जोरों का एक ठहाका लगाया और

कहा कि यार, ये तो बाजार की मक्खियाँ है, जो अकारण हमारे चारों ओर भिनभिनाया करती हैं। ये सामने प्रशंसा और पीछे-पीछे निन्दा किया करती हैं। हम इनके दिमाग पर बैठे हुए हैं, ये मक्खियाँ हमें भूल नहीं सकती और चूँकि ये हमारे बारे में बहुत सोचा करती हैं इसलिए, ये हमसे डरती हैं और हम पर शंका भी करती हैं। ये मक्खियाँ हमें सजा देती हैं हमारे गुणों के लिए। ऐब को तो ये माफ कर देंगी, क्योंकि बड़ों के ऐब को माफ करने में भी एक शान है, जिस शान का स्वाद लेने को ये मक्खियाँ तरस रही हैं जिनका चरित्र उन्नत है, जिनका हृदय निर्मल और विशाल है, वे कहते हैं, 'इन बेचारों की बातों से क्या चिढ़ना? ये तो खुद ही छोटे हैं।' मगर, जिनका दिल छोटा और दृष्टि संकीर्ण है, वे मानते हैं कि जितनी भी बड़ी हस्तियाँ हैं, उनकी निन्दा ही ठीक है और जब हम इनके प्रति उदारता और भलमनसाहत का बर्ताव करते हैं, तब भी वे यही समझते हैं कि हम उनसे घृणा कर रहे हैं और हम चाहे उनका जितना उपकार करें, बदले में हमें अपकार ही मिलेगा।

दरअसल, हम जो उनकी निन्दा का जवाब नहीं देकर चुप्पी साधे रहते हैं, इसे भी वे हमारा अहंकार समझते हैं। खुशी तो उन्हें तभी हो सकती है, जब उनके धरातल पर उतरकर उनके छोटेपन के भागीदार बन जायँ।

सारे अनुभवों को निचोड़कर नीत्से ने एक दूसरा सूत्र कहा, 'आदमी में जो गुण महान् समझे जाते है, उन्हीं के चलते लोग उससे जलते भी हैं।'

तो इर्ष्यालु लोगों से बचने का क्या उपाय है? नीत्से कहता है कि "बाजार की मक्खियों को छोड़कर एकान्त की ओर भागो। जो कुछ भी अमर तथा महान् है, उसकी रचना और निर्माण बाजार तथा सुयश से दूर रहकर किया जाता है। जो लोग नये मूल्यों का निर्माण करनेवाले हैं, वे बाजारों में नहीं बसते, वे शोहरत के पास भी नहीं रहते हैं। जहाँ बाजार की मक्खियाँ नहीं भिनकतीं, वह जगह एकान्त है।"

यह तो हुआ ईष्यालु लोगों से बचने का उपाय। किन्तु ईर्ष्या से आदमी कैसे बच सकता है? ईर्ष्या से बचने का उपाय मानसिक अनुशासन है। जो व्यक्ति ईष्यालु स्वभाव का है,उसे फालतू बातों के बारें में सोचने की आदत छोड़ देनी चाहिए। उसे यह भी पता लगाना चाहिए कि जिस अभाव के कारण वह ईर्ष्यालु बन गया है, उसकी पूर्ति का रचनात्मक तरीका क्या है। जिस दिन उसके भीतर यह जिज्ञासा जगेगी उसी दिन से वह ईर्ष्या करना कम कर देगा।

यह पाठ:

प्रस्तुत निबंध के निबंधकार हैं रामधारी सिंह 'दिनकर'। इस निबंध में निबंधकार ने ईर्ष्या की उत्पत्ति और उसके प्रभाव से मन में उपजनेवाले विकारों पर चर्चा की है। अपने इस निबंध में ईर्ष्या भाव को समझाने के लिए एक वकील और एक बीमा एजेंट का उदाहरण देते हुए निबंध को आगे बढ़ाया। वे कहते हैं कि वकील के पास मीठा बोलनेवाली पत्नी है। सुख देनेवाला नौकर है। उनका भरापूरा परिवार है, फिर भी वे सुखी नहीं हैं क्योंकि वकील की बगल में रहनेवाले बीमा एजेंट के पास अधिक सुविधाएँ हैं। मोटरकार, अधिक पैसा। सबकुछ अधिक है। वकील बीमा एजेंट की खुशियों को देखकर दुखी होते हैं। वे अपने सुखों से आनंद नहीं उठा पाते। हमेशा अपनी तुलना बीमा एजेंट से करके दु:खी होते हैं। ऐसी स्थिति केवल वकील और बीमा एजेंट के साथ नहीं है, यह तो एक उदाहरण मात्र है। ईर्ष्या करनेवाले हर व्यक्ति की ऐसी दयनीय स्थिति होती है। व्यक्ति अपनी तुलना हमेशा दूसरों से करता है और अकारण दु:खी होता है। इसलिए इस लेखन ने इस भाव को ईश्वर का अनोखा वरदान कहा है।

निबंधकार यह भी कहते हैं कि इस ईर्ष्या भाव के कारण हमारा मन संकुचित हो जाता है। हमें ईश्वर ने एक सुंदर बगीचे के समान जो खुशियाँ दी

हैं, हम उसके लिए आनंदित नहीं होते। ईश्वर के प्रति कृतज्ञ नहीं होते, वरन् जितना है उससे अधिक खुशियाँ क्यों नहीं मिल रही हैं उसके लिए हमेशा परेशान रहते हैं। जिससे मनुष्य के चरित्र का पतन होता है। रात-दिन वह वही सोचता है। संसार विकास का रास्ता छोड़ कभी-कभी गुमराह हो जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह निरंतर दूसरे को हानि पहुँचाता रहता है। और उससे उसे आनंद भी मिलता रहता है।

लेखक ने कहा है कि ईर्ष्या की बड़ी बेटी का नाम निंदा है। ईर्ष्या करनेवाला व्यक्ति दूसरे की निंदा करने से नहीं हिचकिचाता। वह दूसरे की निंदा इसलिए करता है कि लोग उसे अच्छा समझें और जिसकी निंदा की जा रही है उसे बुरा समझें। पर सामान्यत: ऐसा नहीं होता। लेखक इसे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हम किसी दूसरे की निंदा कर, उसे समाज की आंखों में नीचे गिराकर अपने को अच्छा या श्रेष्ठ साबित नहीं कर सकते। वरन् इससे निंदा करनेवाले का ही नुकसान अधिक होता है। मनुष्य अपना विकास तो तभी कर सकता है जब वह अपने में सद्‌गुणों को विकसित करें।

निबंधकार ने यह भी स्पष्ट किया है कि ईर्ष्या सबसे पहले ईर्ष्या करनेवाले व्यक्ति को ही जलाती है। ईर्ष्या करनेवाला व्यक्ति मानो ईर्ष्या की साक्षात प्रतिमूर्ति होकर खड़ा होता है। वह जन कल्याण को छोड़कर अपनी सारी शक्ति दूसरे की निंदा में लगा देता है। ईर्ष्या करनेवाला व्यक्ति कभी आनंदित नहीं हो पाता। दूसरे को कष्ट पहुँचाकर ईर्ष्यालु व्यक्ति प्रसन्न होता है। उसकी उस खुशी और हँसी की तुलना लेखक ने राक्षस से की है। ईर्ष्या हमारे लिए लाभदायक तभी है जब हम किसी से ईर्ष्या कर कोई अच्छा काम करें। अपना और समाज का भला करें। ईर्ष्या भाव पर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा नीत्से के विचारों को भी लेखक ने उदाहरण के तौर पर दिया है। नीत्से ने निन्दा करने वाले की तुलना सड़क पर भिन भिनाने वाली मक्खी से की है। वे कहते

हैं हममें जो सद्‌गुण है वह निन्दा करने वाले के पास नहीं है। इसलिए वह हमारी निन्दा करके हमें उसकी सजा देता है। निन्दा करनेवाले तो ऐसे हैं कि अगर हम उदार बनकर उन्हें माफ कर देते हैं तो भी वे सोचते हैं कि हम उनसे नफरत करते हैं और यदि चुप रहते हैं तो वे यह सोचते हैं कि हम घमंडी हैं। ईर्ष्या से बचने के लिए लेखक ने मानसिक अनुशासन पर बल दिया है। इसका अर्थ है यदि हमारे पास कोई चीज नहीं है तो हम किसी से ईर्ष्या न करें, उसे प्राप्त करने की रचनात्मक चेष्टा करें इस प्रकार ईर्ष्या से बचें।

शब्दार्थ :

उपवन-बगीचा, सद्‌गुण-अच्छे गुण, उन्नति-विकास, फिक्र-चिन्ता, अपव्यय-फिजुलखर्ची, चिन्ता-दग्धं - चिन्ता से परेशान।

प्रश्न और अभ्यास :

१. सही विकल्प चुनिए।

(i) मेरे घर के दाहिने कौन रहते हैं।

(A) साहब (B) क्लर्क

(C) वकील (D) नेता

(ii) किसकी पत्नी मृदुभाषिणी है?

(A) लेखक की (B) वकील की

(C) बीमा एजेंट की (D) सबकी

(iii) किसकी विभव-वृद्धि से वकील साहब का कलेजा जलता है?

(A) बीम एजेंट (B) वकील

(C) लेखक (D) पड़ोसी

(iv) ईर्ष्यालु व्यक्ति अपनी तुलना किससे करता है?

(A) अपने से (B) घर के लोगों से

(C) माता-पिता से (D) दूसरों से

(v) ईर्ष्या की बड़ी बेटी का नाम क्या है?

(A) आक्रोश (B) क्रोध

(C) निन्दा (D) निराशा

(vi) संसार में कोई भी मनुष्य किससे नहीं गिरता।

(A) लोभ (B) निन्दा

(C) हिंसा (D) ईर्ष्या

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-दो वाक्यों में दीजिए।

(i) ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों की निन्दा क्यों करता है?

(ii) कौन सभा-सोसाइटी में काफी भाग लेते हैं?

(iii) वकील साहब किस चिन्ता में भुने जा रहे हैं?

(iv) ईश्वर का दिया उपवन पाकर भी ईर्ष्यालु व्यक्ति किस चिन्ता में निमग्न रहता है?

(v) ईर्ष्या को लेखक ने दोष क्यों माना है?

(vi) ईर्ष्या से मनुष्य की किस चीज में बाधा पड़ती है?

(vii) ईर्ष्यालु व्यक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार क्या है?

(viii) जब ईश्वरचंद्र विद्यासागर इस तजरुबे से होकर गुजरे तो उन्होंने क्या कहा?

(ix) ये तो बाजार की मक्खियाँ हैं-ऐसा नीत्से ने किसके लिए कहा है?

(x) नीत्से ईर्ष्यालु व्यक्तियों से बचने का क्या उपाय बताते हैं?

(xi) ईर्ष्या से बचने का क्या उपाय है?

३. तीन वाक्यों में उत्तर दीजिए

(i) ईर्ष्या सबसे पहले किसे जलाती है और कैसे?

(ii) चिन्ता को लोग चिता क्यों कहते हैं?

(iii) ईर्ष्या से जला भुना आदमी चलती फिरती गठरी के समान है कैसे?

४. निम्न प्रश्नों के उत्तर लगभग दस-बारह वाक्यों में दीजिए।

(i) ईर्व्या का अनोखा वरदान क्या है?

(ii) कोई सुनने वाला मिल जाए तो ईर्ष्यालु व्यक्ति क्या करता है?

(iii) ईर्ष्या का संबंध प्रतिद्वंद्विता से कैसे है?

(iv) ईर्ष्या का कौन-सा पक्ष लाभदायक है?

(v) ईर्ष्यालु व्यक्तियों के बारे में नीत्से ने क्या प्रतिक्रिया रखी है?

(vi) जिनका चरित्र उज्ज्वल है वे क्या कहते हैं?

(vii) हम निन्दा का जवाब न देकर जब चुप्पी साधते हैं तो क्या होती है?

(viii) ईर्ष्यालु व्यक्ति को अपने स्वभाव में परिवर्तन के लिए क्या करना चाहिए?

(ix) उपवन को पाकर भी ईष्यालु व्यक्ति क्या करता है?

अतिथि

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा का जन्म उत्तरप्रेदश के बैसवाड़ा के उन्नाव जनपद में हुआ। आप अंग्रेजी साहित्य के प्राध्यापक रहे। लखनऊ विश्वविद्यालय तथा बी. आर. महाविद्यालय आगरा में भी नौकरी की। मार्क्सवाद, समाजशास्त्र और भाषा शास्त्र में आपकी विशेष रूचि रही। आपने निराला-साहित्य-साधना को तीन खण्डों में प्रकाशित करवाया। 'प्रगतिशील' लेखक संघ के साथ आपका घनिष्ठ संबंध रहा है।

प्रमुख कृतियाँ: निराला की साहित्य साधना, भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द और उनका युग, भाषा और समाज, मार्क्स और पिछड़े समाज, आस्था और सौंदर्य, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, भाषा, युगबोध और कविता, इतिहास दर्शन (दो भाग), भारतीय साहित्य की भूमिका, हिन्दी जाति का साहित्य रूप तरंग, सदियों के सोये जाग उठे (कविता), विरामचिह्न (निबंध), पंचरत्न, बड़े भाई, अपनी धरती अपने लोग, चार दिन आदि।

अतिथि

रामविलास शर्मा

अतिथि से मेरा मतलब उन लोगों से नहीं है जो बिना तिथि बताये आपके भोजन में शरीक होने के लिए आ जाते हैं। इस तरह का आतिथ्य अब चाय-पानी तक रह गया है; खासकर, इस महँगाई के जमाने में लोग भोजन के लिए पूछते हुए सवाल को मन में दोहरा लेते हैं। अगर आपका जजमान जिसके यहाँ आप अतिथि, यानी मान न मान मैं तेरा मेहमान बने हैं- दम साधकर घबराहट में एक ही साँस में आपसे भोजन के लिए पूछे तो आप उसके शब्दों का उत्तर उनकी ध्वनि में पढ़कर तुरन्त ही नहीं दे देंगे। यदि मीठी-मीठी बातें करके वह आपसे भोजन के लिए ऐसे आग्रह करे जैसे वह आपकी बाट ही जोह रहा था और आपके बिना उसका भोजन विष-तुल्य हो जायगा, तो आप निश्चय जानिये कि उसने कोई भारी दाँव सोच रखा है। आप लेखक हों और मेहमान नवाज प्रकाशक हों तो समझ लीजिए कि दालदा की पूड़ियाँ और कद्दू की तरकारी खिलाकर वह आपसे मुफ्त लेख लिखाना चाहता है। इस काल के अतिथि-सत्कार से ब्राह्मण सावधान!

मैं पहले ही कह चुका कहूँ कि अतिथि से मेरा मतलब उन लोगों से नहीं है। मेरा मतलब उन लोगों से है जो 'तिथि' की बात दूर, 'घड़ी', 'पल', 'घण्टा', 'पहर' का भी ध्यान न रखे हुए एकदम अयाचित आ धमकते हैं। इन सभी शब्दों में 'अ' लगाने से इनका नामकरण हो सकता है, लेकिन जब तक 'अच्छी हिन्दी' के लेखक इस ओर अपना उत्तरदायित्व नहीं निबाहते, तब तक मैं उन्हें अतिथि ही कहता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि शब्द पर न जाकर आप मेरा मतलब समझ लें।

आप सोचिये, चौबीस घंटों में ऐसा कौन-सा घण्टा या मिनट है, जब कभी-न-कभी किसी अतिथि ने आकर आपका काम न रोक दिया है। वे लोग धन्य हैं, जिन्हें बारह से चार तक कम-से कम रात के समय इन मेहमानों से नजात मिली हो।

कालेज का अध्यापक अगर लेखक भी हो तो उसके लिए अतिथि की आवाज यमदूत के संदेश से कम भयावह नहीं होती। सबेरे चाय पीकर या स्वस्थ मन के हुए तो दूध-बादाम पीकर आप कालेज की किताबें लेकर बैठे। दस मिनट के बाद जब आपकी तन्मयता बढ़रही थी, तभी आ गये अतिथि जी। कहेंगे- 'आप शायद काम कर रहे थे; मैं थोड़ी ही देर बैठूँगा।' अब आप यह तो कहने से रहे- 'नहीं; थोड़ी देर भी न बैठिये।' अरब के तम्बू में पहले ऊँट की गर्दन आयी, फिर क्रमशः दस बज गये और आपकी उदासीनता, अँगड़ाइयाँ, इधर-उधर देखना, खामोश रहना- वह सभी कुछ व्यर्थ करते रहे। आखिर वह आपकी परेशानी का पूरा मजा लेकर उठे। आपका समय नष्ट करने के लिए खेद प्रकट किया और अन्त में चलने ही लगे कि उन्हें वह असली काम याद आ गया जिसके लिए वह आये थे। आप जल्दी से निपटाने के फिराक में कमरे से बाहर निकले; लेकिन वह सीढ़ी पर एक पैर रखकर फिर जम गये। खैर; दस मिनट के बाद उन्होंने नमस्ते भी किया, लेकिन आपको घूमकर चलने का मौका न देकर उन्होंने अपना 'पुनश्च' फिर आरम्भ कर दिया। यहाँ एक-एक क्षण कल्प हो रहा है, यह किसी को क्या मालुम?

भोजन के उपरान्त अखबार पढ़ते-पढ़ते कहीं आप झपकी लेने लगे, तो अतिथि की आवाज ब्रह्माण्ड पर सोंटे की तरह ऐसे गिरती है कि स्वप्न-सत्य सब एक हो जाता है। टारपिडो लगने से जैसे जहाज का मल्लाह चौंक उठता है, वैसे ही कुछ क्षण को तो हृदय-वीणा के तार ऐसे झनझना उठते हैं जैसे उसकी तूम्बीर पर पत्थर पड़े हों।

सौभाग्य से नींद पूरी करके, हाथ-मुँह धोकर, प्रसन्नचित्त आप बहुत दिनों के पत्रों का जवाब लिखने बैठे, तभी यह सोचकर कि यह आपका फुर्सत का समय होगा, अतिथि जी पुन: आ पधारे। कहीं कॉलेज की छुट्टियाँ हुईं, तब तो अतिथि को छूट ही मिल जाती है। आपने बड़ी शिष्टता बरतते हुए किसी काम का जिक्र किया, तो बस वह बरस पड़े- अजी, अब भी तुम्हें काम है? अब तो छुट्टियाँ हैं, तुम्हें फुरसत ही फुरसत है और फिर जमे तो बेहोश होकर अंगद का पैर बनकर रह गये।

रात में आप बहुत निश्चिन्त होकर लेख लिखने बैठे! कुछ देर तक कागज खराब करने के बाद जब सुरूर आया, तभी आपके फालतू समय में हिस्सा बटाने के लिए पुन: अतिथि जी आ धमके। क्या करें बेचारे। दिन में आपके मिलने का ठीक नहीं रहता। रात में खुद अपने काम का नुकसान करके आपको कृतार्थ करने आये हैं। उन्हें क्या मालुम उनके कारण हिन्दी का भण्डार कितने रत्नों से वंचित रह जाता है। कितने ही महाग्रन्थों की रचना का विचार उन महापुरूषों का ध्यान आते ही तज देना पड़ता है। कम से कम कवि होने का विचार तो छोड़ ही देना पड़ा क्योंकि इन कविता के दुश्मनों का कोई ठिकाना नहीं, कब कल्पना लोक में वनमानुष बनकर कूद पड़े। सम्पादक चिट्ठी लिखंते हैं, फिर तार भेजते हैं, पत्रों का उत्तर न पानेवाले गालियाँ लिखकर भेजते हैं। समय पर भोजन-स्नान के बदले, आलोचक बनने से अभिशाप स्वरूप, निठल्ले कवियों से कविता और उन्हीं के मुँह उसकी प्रशंसा सुननी पड़ती है। लेकिन इस दर्द को कोई क्या समझे?

अगर इस लेख को मैं अपने कमरे में टाँग दूँ तो क्या आप समझते हैं, उन की स्थिरता में-अथवा जड़ता में-कोई अन्तर आ जाएगा? वे इस लेख की प्रशंसा करने के बहाने ही जम जायेंगे और फिर तो दस-पाँच मिनट में उठनेवाले कोई और ही होंगे!

यह पाठ:

प्रस्तुत पाठ में लेखक असमय में पहुँचने वाले अतिथियों की सरल ढंग से चर्चा की है। ये स्वार्थी अतिथि तो ऐसे हैं जो घड़ी, पल, घण्टा, पहर किसी भी बात का ज्ञान नहीं रखते। इनके लिए समय-असमय कुछ नहीं! सबेरे से रात तक उन्हें जब मौका मिलता है आ सकते हैं। अपने आने के पीछे मजबूत तर्क भी रखते हैं। एक बार आकर बैठ गये तो जाने का नाम नहीं लेते। इस तरह इन अतिथियों के आने से हमारा काम हमेशा रूक जाता है। शिष्टतावश हम उनसे कुछ कह नहीं पाते केवल मात्र मन मसोस कर रह जाते हैं। कभी-कभी तो सारा का सारा काम बिगड़ जाता है पर अतिथि को इसकी परवाह नहीं होती। आप काम कर रहे हैं - कहने पर वे आपको मीठी झिड़की देकर जो बैठते हैं, उठने का नाम ही नहीं लेते।

शब्दार्थ-विष-तुल्य जहर के समान, फिराक-सोच, सोटा-मोटा डंडा।

प्रश्न और अभ्यास :

१. निम्नलिखित में से सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान भरिए।

(i) अतिथ्य अब _____ तक रह गया है।

(A) नास्ता (B) खानपान

(C) चाय-पानी (D) रहन-सहन

(ii) मान न मान मैं तेरा-_____

(A) कद्रदान (B) इम्तहान

(C) फूड़ादान (D) मेहमान

(iii) शब्द पर न जाकर आप मेरा _____समझ लें।

(A) भाव (B) मतलब

(C) जीवन (D) कहना

(iv) दस मिनट बाद आपकी तन्मयता बढ़ रही थी, तभी आ गये _।

(A) अतिथि जी (B) साहब जी

(C) बाबू जी (D) पिताजी

(v) फिर जगे तो बेहोश होकर _____ के पैर बन कर रह गये।

(A) राम के (B) रावण के

(C) लक्ष्मण के (D) अंगद के

२. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए

(i) लेखक ने अतिथि किसे कहा है?

(ii) कौन धन्य है?

(iii) कॉलेज के अध्यापक के लिए अतिथि की आवाज कैसी है?

(iv) सवेरे-सवेरे अतिथि आकर क्या कहते हैं?

(v) अतिथि पर किसका प्रभाव नहीं होता?

(vi) अतिथि जाते जाते सीढ़ी पर क्यों रूक जाते हैं?

(vii) अतिथि के न जाने पर लेखक का एक-एक पल किसमें बदल जाता है?

(viii) भोजन के उपरान्त अखबार पढ़ते हुए झपकी लगते समय अतिथि की आवाज कैसी लगती है?

(ix) रात को अतिथि जब लेखक से मिलने आते हैं तो क्या कहते हैं?

(x) लेखक ने कविताओं का दुश्मन किसे कहा है?

(xi) लेखक ने अतिथियों को वनमानुष क्यों कहा है?

३. तीन वाक्यों में उत्तर दीजिए।

(i) लेखक इस पाठ में किस प्रकार के अतिथियों की बात कहते हैं?

(ii) पत्रों का जवाब लिखने के लिए बैठते समय अतिथि आकर क्या कहते हैं?

(iii) लेखक ने कवि होने का विचार क्यों छोड़ दिया?

(iv) यदि प्रकाशक मेहमाननवाज हों तो लेखक को क्या समझ लेना चाहिए?

(iv) किन लोगों को लेखक ने धन्य कहा है?

४. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग दस-बारह वाक्यों में दीजिए।

(i) निबन्धकार ने आजकल के अतिथियों के बारे में क्या कहा है?

(ii) अतिथि सवेरे-सवेरे घर आकर लेखक को किस तरह परेशान करते हैं?

(iii) कॉलेज की छुट्टियों में घर आकर अतिथि क्यों काम नहीं करने देते?

(iv) रात में अतिथि लेखक के किस काम में बाधा डालते हैं?

(v) निबन्धकार ऐसा क्यों कहते हैं कि यदि वे इस लेखन को अपने कमरे में टाँग भी देंगे तो अतिथियों की जड़ता में कोई परिवर्तन नहीं आएगा?

मुंशी प्रेमचंद

(जन्म : ३१ जुलाई १८८०-मृत्यु : ८ अक्तूबर १९३६)

मुंशी प्रेमचंद का जन्म वनारस के करीब लमही गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम अजायब राय तथा माता का नाम आनन्दी देवी था। प्रेमचंद का असली नाम धनपत राय था। परंतु उनके चाचा जी ने उन्हें प्यार से नवाब राय नाम दिया था, जिस नाम से उर्दू में लिखते थे। 'सोज़ेवतन' के जब्त हो जाने के बाद उनके लिखने पर पाबंदी लग गई तो अपने प्रकाशक मित्र मुंशी दया नारायण निगम के सुझाव पर उन्होंने अपना नाम प्रेमचंद रखा और तभी से उसी नाम से उर्दू और हिन्दी दोनों में लिखना शुरु कर दिया। सात वर्ष की अवस्था में माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहांत हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन बड़ा संघर्षमय रहा। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू और फारसी से हुआ। १८९८ में मैट्रिक की परीक्षा उतीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही पढाई जारी रखी। १९१० में इंटरपास किया और १९१९ में बी.ए. पास करने के बाद वे शिक्षा-विभाग के सब-इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। आगे चलकर गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी।

प्रेमचंद की रचना-दृष्टि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रवृत्त हुई। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, संस्मरण, आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। प्रमुखतया उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट्' के नाम से जाने और माने गये। प्रेमचंद का 'गोदान' उपन्यास न केवल हिन्दी उपन्यास-साहित्य में बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में मील का पत्थर है। उन्होंने हिन्दी

कथासाहित्य की एक ऐसी परम्परा का विकास किया जिसने पूरी शती के साहित्य का मार्गदर्शन किया। उन्होंने हिन्दी कथा लेखन की पुरानी परिपाटी को बदल डाला। कथा-साहित्य को कल्पना और मनोरंजन की दुनिया से निकालकर 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की ओर मोड़ा। उनकी रचनाओं में पहली बार समाज के पूरे परिवेश का यथार्थ चित्र देखने को मिला। उन्होंने आम आदमी के जीवन को निकटता से देखा और उसे अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया। उनका लेखन हिन्दी-साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा।

प्रमुख कृतियाँ:

उपन्यास: प्रतिज्ञा, वरदान, सेवा सदन, कर्मभूमि, रंगभूमि, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, निर्मला, गबन, गोदान, मंगलसूत्र (अधूरा)

कहानी: ढाई सौ कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित। इसके अलावा कई और कहानियाँ यत्र-तत्र प्रकाशित हैं।

नाटक: कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी

पत्रिका-संपादन: हंस, माधुरी, जागरण

'बूढ़ीकाकी' प्रेमचंद की एक उत्कृष्ट यथार्थवादी कहानी है। इस कहानी के जरिए मनुष्य के अमानवीय और स्वार्थांध चरित्र का खुलासा किया गया है। बूढ़ीकाकी के जीवन में एकमात्र सहारे के रूप में भतीजा बुद्धिराम है जिसके नाम पर काकी ने अपनी सारी संपत्ति लिखवा दी है। जिह्वास्वाद के अतिरिक्त उसके जीवन में और कोई लालसा नहीं है। परंतु बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा की स्वार्थपरता के कारण उसकी यह लालसा अपूर्ण बनी रहती है। बड़ी कठिनाई से पेट भर भोजन मिलता है। घर की छोटी लड़की लाडली को छोड़कर अन्य कोई सहानुभूति भी नहीं रखता। काकी का मन हरपल अच्छी

चीजों के लिए तरसता रहता है। घर में तिलक उत्सव के अवसर पर तरह-तरह के पकवान, पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ, मसालेदार तरकारियाँ आदि बनती हैं। इन चीजों की सुगंध से काकी की उत्कट क्षुधा जागने लगती हैं। देरतक इन चीजों के न मिलने पर पेट की ज्वाला से विवश होकर काकी रेंगते हुए कड़ाह के पास जा पहुँचती है। चीजें तो नहीं मिलतीं, उल्टे रूपा के व्यंग्य सहने पड़ते हैं। फिर कई घंटों के बाद काकी मेहमानों के पास आ बैठती है। इस बार बुद्धिराम काकी की भावना को बिना समझे उसे खींचते हुए कोठरी में पटक देता है। देर रात को काकी अपने पास लाडली को पाती है जो अपने हिस्से की चीजें छुपाकर काकी के लिए लाई थी। उतनी चीजों से जब काकी का मन नहीं भरता तो वह मेहमानों की जूठी पत्तलों को चाटने लगती है। यह देखकर रूपा को पछतावा होने लगता है और उसमें अपराधबोध पैदा होता है। वह बार-बार ईश्वर से अपनी गलती के लिए क्षमा याचना करती है। फिर प्रसन्नचित्त होकर सारी चीजों से सजी थाली चचेरी सास को परोसती है और उनसे क्षमा माँगती है। बूढी काकी सब कुछ भुलाकर परम आनंद से चीजों का स्वाद लेने लगती है। इस प्रकार प्रेमचंद ने रूपा के हृदय-परिवर्तन के जरिए समाज में बुजुर्गों पर हो रहे दुर्व्यवहार को रोकने तथा उनके प्रति कर्तव्य का ज्ञान कराने का प्रयास किया है।

बूढ़ी काकी

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनः आगमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिहवा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और घर वाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और न मिलती तो ये रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वे गला फाड़कर रोती थीं।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था। बेटे तरूण हो-होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के अलावा और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। भतीजे ने सारी सम्पत्ति लिखाते समय खूब लम्बे चौड़े वादे किये, किन्तु वे सब वादे केवल कुली-डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्जबाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपए से कम न थी तथापि बूढ़ी काकी को पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। इसमें उनके भतीजे पंडित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्धांगिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव से सज्जन थे, किन्तु उसी समय तक जब कि उनके कोष पर आँच न आये। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थी। अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि भौतिक

आश्वासन और सूखी महानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता हो, उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सुचेष्टा को दबाए रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगती तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते। लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता का यह रंग देखते तो वे बूढ़ी काकी को और सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता, कोई इन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोतीं परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिये रोती हैं, अतएव उनके संताप और आर्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ, काकी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगतीं तो रूपा घटनास्थल पर आ पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्वा कृपाण को कदाचित् ही प्रयोग करती थी, यद्यपि उपद्रव-शान्ति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था, तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई-चबैना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महँगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से सुरक्षा कहीं सुलभ थी तो बस यहीं। इसी स्वार्थ अनुकूलता ने उन दोनों में सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुंड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप खड़ा भाट विरुदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों की 'वाह, वाह' पर ऐसा खुश हो रहा था मानो इस 'वाह-वाह' का यथार्थ में वही अधिकारी है।

दो-एक अँग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गँवार मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन में व्यस्त थी। भट्टियों पर कड़ाह चढ़ रहे थे। एक में पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ निकल रही थीं, दूसरे में अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हंडे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसाले की क्षुधावर्धक सुगन्धि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थीं। यह स्वाद मिश्रित सुगन्धि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, संभवत: मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गई, कोई भोजन लेकर नहीं आया। मालूम होता है सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया, परन्तु अपशकुन के भय से वह रो न सकीं।

'आहा... कैसी सुगन्धि है? अब मुझे कौन पूछता है। जब रोटियों के ही लाले पड़े हैं तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भरपेट पूड़ियाँ मिलें?' यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजे में हूक-सी उठने लगी। परन्तु रूपा के भय से उन्होंने फिर मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्हीं दुखदायक विचारों में डूबी रहीं। घी और मसालों की सुगंधि रह-रहकर मन को आपे से बाहर किए देती थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूड़ियों का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ, आज लाडली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकरे सदा दुख दिया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपा ने भली-भाँति भोजन किया होगा। कचौड़ियों से अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चल कर कड़ाह के सामने ही बैठूँ। पूड़ियाँ छन-छनकर तैयार होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी। फूल हम घर में भी सूँघ सकते हैं, परन्तु वाटिका में कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ुँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरीं और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास जा बैठीं। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है।

रूपा उस समय कार्यभार से उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में, कभी कड़ाह के पास जाती, कभी भंडार में जाती। किसी ने बाहर से आकर कहा, 'महाराज ठंडई माँग रहे हैं।' ठंडई देने लगी। इतने में फिर किसी ने आकर कहा, 'भाट आया है, उसे कुछ दे दो।' भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा, 'अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है? जरा ढोल, मजीरा उतार दो।' बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ीं। प्यास से स्वयं कंठ सूख रहा था। गर्मी के मारे फुँकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश न था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आँख हटी और चीजों की लूट मची। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी देखा तो जल गयी। क्रोध न रूक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई हैं, मन में क्या कहेंगी। पुरूषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेंढ़क केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें

दोनों हाथों से झटक कर बोली- 'ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होती तो जाने किसकी हाँडी में मुँह डालती? गाँव देखेगा तो कहेगा कि बुढ़िया भरपेट खाने को नहीं पाती तभी तो इस तरह मुँह बाये फिरती है। डायन न मरे न मांचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवा कर दम लेगी। इतनी ठूँसती है न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे, तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाए, परन्तु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाए।

बूढ़ी काकी ने सिर उठाया, न रोयीं न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं। आवाज ऐसी कठोर थी कि हृदय और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ, सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे। नदी में जब कगार का कोई वृहद् खंड कटकर गिरता है तो आस-पास का जल समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

भोजन तैयार हो गया है। आँगन में पत्तलें पड़ गईं, मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानों में नाई और सेवकगण भी उसी मंडली के साथ, किन्तु कुछ हटकर भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जब तक सब-के-सब खा न चुकें कोई उठ नहीं सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढ़े–लिखे थे सेवकों के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थे। वे इस बंधन को व्यर्थ और बेकार की बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चाताप कर रही थीं कि मैं कहाँ से कहाँ आ गई। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजी पर दु:ख था। सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे, घर वाले कैसे

खाएँगे। मुझसे इतनी देर भी न रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने नहीं आएगा, न जाऊँगी।

मन-ही-मन इस प्रकार का विचार कर वह बुलाने की प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घी की रूचिकर सुवास बड़ी धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रही थी। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गयी होगी। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिए लेट गयी। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगी। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसी की आवाज सुनाई नहीं देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया है। रूपा चिढ गयी है, क्या जाने न बुलाये। सोचती हो कि आप ही आएँगी, वह कोई मेहमान तो नहीं जो उन्हें बुलाऊँ। बूढी काकी चलने को तैयार हुई। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आएँगी, उनकी स्वादेन्द्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह -तरह के मंसूबे बाँधे-पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से, कचौरियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मैं तो माँग-माँगकर खाऊँगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं? कहा करें, इतने दिन के बाद पूड़ियाँ मिल रही हैं तो मुँह झुठा करके थोड़े ही उठ जाऊँगी।

वह उकडूँ बैठकर सरकते हुए आँगन में आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान–मंडली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उँगलियाँ चाटता था, कोई तिरछे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं। कोई इस चिन्ता में था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छूटी जाती हैं किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना

माँगते संकोच करता था कि इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में आ पहुँची। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे–अरे, यह बुढ़िया कौन है? यहाँ कहाँ से आ गयी? देखो, किसी को छू न दे।

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गये। पूड़ियों का थाल लिए खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेइमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही उसका टेंटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अँधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशारूपी वटिका लू के एक झोंके में विनष्ट हो गई।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया। बाजे वाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उनकी निर्लज्जता के लिए दंड देने का निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर, दीनता, पर, हत्ज्ञान पर किसी को करूणा न आयी थी। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली को काकी से अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल–विनोद और चंचलता की उसमें गन्ध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता–पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा तो लाडली का हृदय धक् रह गया। वह झुँझला रही थी कि हम लोग काकी को क्यों बहुत–सी पूड़ियाँ नहीं देते। क्या मेहमान सब–की–सब खा जाएँगे? और यदि काकी ने मेहमानों से पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिल्कुल न खायी थीं। अपनी गुड़िया की पिटारी में बन्द कर रखी थीं। उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना

चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी, पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगी।

रात को ग्यारह बज गये थे। रूपा आँगन में पड़ी सो रही थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही हैं, तो वह चुपके से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अँधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थी और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडली की दृष्टि सामने वाले नीम पर गई। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ, उनकी गदा, वह स्पष्ट दिखलाई दे रही है। मारे भय के उसने आँखें बन्द कर लीं इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाडली को ढाढ़स हुआ। कई सोए हुए मनुष्यों के बदले एक भागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिक धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकी की कोठरी की ओर चली।

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाए लिए जाता है। उनके पैर बार–बार पत्थरों से टकराए तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका, वे मूर्च्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुईं तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझी कि सब लोग खा–पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी?

राम! क्या खाऊँ? पेट में अग्नि धधक रही है। हा! किसी ने मेरी सुधि न ली। क्या मेरा पेट काटने से धन जुड़ जाएगा? इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि न जाने बुढ़िया कब मर जाए? उसका जी क्यों

दुखावें ? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ ? इस पर यह हाल। मैं अन्धी, अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ, न बूझूँ। यदि आँगन में चली गयी तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खाना खा रहे हैं फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्ही पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दीं, तब अब क्या देंगे ? यह विचार कर काकी निराशामय सन्तोष के साथ लेट गईं। ग्लानि से गला भर-भर आता था, परन्तु मेहमानों के भय से रोती न थीं। सहसा कानों में आवाज आयी- 'काकी उठो, मैं पूड़ियाँ लायी हूँ।' काकी ने लाडली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठी। दोनों हाथों से लाडली को टटोला और उसे गोद में बिठा लिया। लाडली ने पूड़ियाँ निकालकर दीं।

काकी ने पूछा- 'क्या तुम्हारी अम्मा ने दी है ?'

लाडली ने कहा- 'नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।'

काकी पूड़ियों पर टूट पड़ीं। पाँच मिनट में पिटारी खाली हो गयी। लाडली ने पूछा-'काकी पेट भर गया ?'

जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उस भाँति इन थोड़ी पूड़ियों ने काकी की क्षुधा और इक्षा को और उत्तेजित कर दिया था। बोलीं- 'नहीं बेटी, जाकर अम्मा से और माँग लाओ।'

लाडली ने कहा - 'अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेंगी।'

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुरचन गिरी थी। बार-बार होंठ चाटती थीं, चटखारे भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। सन्तोष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का

स्मरण करना उन्हें मदान्ध बनाता है। काकी का अधीर मन इच्छाओं के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाडली से बोलीं– 'मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले चलो, जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।'

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठी पत्तलों के पास बिठा दिया। दीन, क्षुधातुर, हत्ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन–चुनकर भक्षण करने लगी। ओह.... दही कितना स्वादिष्ट था, कचौड़ियाँ कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अन्तिम समय है,जब सम्पूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँख खुली। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाई के इधर–उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठी पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा–उठाकर खा रही है। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गरदन पर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों की जूठी पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा निकृष्ट कर्म कर रही है। यह वह दृश्य था जिसे देखकर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता मानो जमीन रूक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसार पर कोई आपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा

और भय से उसकी आँखें भर आयीं। इस अधर्म का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन मंडल की ओर हाथ उठाकर कहा– 'परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो। इस अधर्म का दंड मुझे मत दो, नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जाएगा।'

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में कभी न दिख पड़े थे। वह सोचने लगी–हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पति से मुझे दो सौ रूपया आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति। और मेरे कारण। हे दयामय भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन किया। मैं उनके इशारों की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रूपये व्यय कर दिए, परन्तु जिसकी बदौलत हजारों रूपये आए, उसे इस उत्सव में भी भरपेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।

रूपा ने दीया जलाया, अपने भंडार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजाकर बूढ़ी काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उसमें किसी को वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था, जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कंठरूद्ध स्वर में कहा– 'काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।'

भोले–भाले बच्चे की भाँति, जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक एक रोयें से सच्ची सद्–इच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लेने में निमग्न थी।

शब्दार्थ

जवाब दे चुकना– शिथिल हो जाना, कमजोर हो जाना

कालान्तर– समयान्तर

सब्जबाग दिखाना– अपना काम साधने या निकालने के लिए बड़ी–बड़ी आशाएँ दिलाना

अर्धांगिनी– पत्नी

भलमनसाहत– शिष्टता

स्वर्ग सिधारे– मृत्यु को प्राप्त हुए

विद्वेष– ईर्ष्या

जिह्वा कृपाण– जीभ रूपी तलवार (कटु वचन)

नाई– नापित, बाल काटने का काम करने वाला

विरूदावली– प्रशंसा के वाक्य

भाट–चारण, प्रशंसा गायक, खुशामदी

अपशकुन– अशुभ

भट्टियों–चूल्हों

ठंडई– शरबत

कगार– किनारा, तट

जेवनार–गीत–भोजगीत

मंसूबे– इरादे

टेंटुआ– गला, गर्दन

ढाढस– धैर्य, धीरज

तकदीर–भाग्य

पेट की अग्नि–भूख, क्षुधा

अपाहिज–पंगु

दुर्गति– दुर्दशा, बुरी हालत

खुरचन– खुरच कर निकाली गई वस्तु

स्वादेन्द्रिय– जीभ, रसना

मद– नशा

प्रश्न–अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दस–बारह वाक्यों में दीजिए।

(क) "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनः आगमन हुआ करता है" इस बात की पुष्टि कीजिए।

(ख) बूढ़ी काकी के प्रति बुद्धिराम और रूपा का व्यवहार कैसा था?

(ग) ''लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है''– ऐसा क्यों?

(घ) बूढ़ी काकी के साथ लाडली का कैसा सम्बन्ध था ?

(ङ) बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमग्न क्यों बैठी थी?

(च) कड़ाह के पास जा बैठी बूढ़ी काकी के साथ रूपा ने कैसा आचरण दिखाया?

(छ) लाडली किस बात को लेकर झुंझला रही थी और क्यों?

(ज) रूपा ने परमात्मा से क्यों प्रार्थना की?

(झ) हमारे समाज में बुजुर्गों पर हो रहे दुर्व्यवहार का चित्र 'बूढ़ी काकी' कहानी दिखाती है? क्या ऐसा व्यवहार सही है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

जयशंकर प्रसाद

(जन्म ३० जनवरी १८७९–मृत्यु १५ नवंबर, १९३७)

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के प्रसिद्ध सूंघनी साहू परिवार में हुआ। किशोरावस्था के पूर्व ही पिता, माता और बड़े भैया का निधन हो जाने के कारण प्रसाद जी के कंधों पर परिवार का सारा बोझ आ पड़ा। आठवीं कक्षा के पश्चात् उनकी स्कूली शिक्षा छूट गई। उन्होंने घर पर संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। वेद, इतिहास, पुराण, बौद्ध दर्शन तथा साहित्य शास्त्र का गंभीर अध्ययन भी किया।

प्रसादजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध लेखन में उनकी असाधारण दक्षता थी। कवि के रूप में निराला, पंत और महादेवी के साथ छायावाद के कवि–चतुष्टय के रूप में प्रतिष्ठित हुए। काव्य क्षेत्र में प्रसाद जी की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है जिस पर उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था। प्रसादजी को हिन्दी के नाट्य सम्राट होने का गौरव प्राप्त हुआ। नाटक–लेखन में भारतेदु हरिश्चंद्र के बाद वे एक युगप्रवर्तक नाटककार बने जिनके नाटक आज के दर्शक और पाठक बड़े चाव से उपभोग करते हैं। कहानी रचना के क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी कहानियों में भावना की प्रधानता रही। भारतीय संस्कृति, इतिहास और दर्शन के सच्चे प्रेमी होने के नाते उनकी कहानियों में प्रेम, करुणा, त्याग और बलिदान से युक्त भावमूलक आदर्श अभिव्यक्त हुआ। उनकी कहानियों को ऐतिहासिक, काल्पनिक और यथार्थवादी कोटियों में बाँटा जा सकता है। ये सभी कहानियाँ

भावात्मक और अनुभूतिप्रधान हैं। प्रसादजी मूलत: कवि होने के कारण उनकी कहानियों में काव्यात्मक वातावरण छाया रहता है।

प्रमुख कृतियाँ : काव्य: झरना, आँसू, प्रेमपथिक, लहर, कामायनी

नाटक : स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, अजातशत्रु, विशाख, एकघूँट, कामना, करुणालय, कल्याणी परिणय, सज्जन

कहानी संग्रह : छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इंद्रजाल

उपन्यास : कंकाल, तितली, इरावती (अधूरा)

निबंध : काव्य कला तथा अन्य निबंध।

'ममता' प्रसादजी की एक सुप्रसिद्ध कहानी है। भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि पर यह कहानी रचित है। प्रसादजी ने इसमें ममता के चरित्र के जरिए भारतीय संस्कृति और पारंपारिक मूल्यबोध को दिखाया है। ममता रोहतास दृर्ग के मंत्री चूड़ामणि की विधवा बेटी है जो अपने पिता के साथ रोहतास दुर्ग में रहती है। सारी सुख-सुविधाओं के बावजूद ममता अपने जीवन को लेकर उदास और चिंतित रहती है। पिता के लाए हुए स्वर्ण उपहार के प्रति उसमें आकर्षण नहीं है। एकदिन शेरशाह के सैनिक रोहतास-दुर्ग पर अधिकार जमा लेते हैं। युद्ध में ममता के पिता की मृत्यु होती है। ममता भाग निकलती है और काशी के बौद्ध मठ के खंडहरों में शरण लेती है। आगे चलकर चौसा युद्ध में शेरशाह से हारकर विपन्न स्थिति में हुमायूँ एक रात को ममता की झोंपड़ी में पहुँचते हैं और आश्रय की भिक्षा करते हैं। आया हुआ व्यक्ति एक मुगल है, पता लगने से ममता के मन में घृणा भाव पैदा होता है क्योंकि उसके पिता की हत्या किसी मुगल के हाथों जो हुई थी। फिर शरण देने या न देने के प्रश्न को लेकर

भीषण द्वंद्व चलता है। अंत में 'अतिथि देवो भव' की आदर्श–परंपरा के नाम पर ममता हुमायूँ को अपनी झोंपड़ी में आश्रय देती है एवं स्वयं पास की टूटी दीवारों में चली जाती है। दूसरे दिन सुबह हुमायूँ ममता से मिलना चाहते हैं पर ममता नहीं मिलती। तब उस झोंपड़े के स्थान पर एक घर बनाने का आदेश मिरजा को देते हुए हुमायूँ लौट जाते हैं। फिर सैंतालीस सालों बाद हुमायूँ के पुत्र बादशाह अकबर के लोग उसी स्थान पर पहुँचते हैं। उस समय ममता ७० साल की वृद्धा है। मुगलों को अपनी झोंपड़ी सौंपकर ममता स्वर्ग सिधार जाती है। उस स्थान पर हुमायूँ की याद में एक अष्टकोण मंदिर बनवाया तो जाता है पर कहीं भी उस मंदिर पर ममता का नाम लिखा नहीं जाता।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी के जरिये प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति के उच्चादर्श 'अतिथि देवो भव' की प्रतिष्ठा की है।

ममता

रोहतास–दुर्ग प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही थी। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिए वह सुख के कंटक–शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूडामणि की अकेली दुहिता थी। फिर उसके लिए कुछ अभाव का होना असंभव था, परन्तु वह विधवा थी। हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ, निराश्रय प्राणी है–तब विड़म्बना का कहाँ अन्त था?

चूड़ामणि ने चुपचाप उस प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में वह अपना जीवन मिलाने में बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेहपालिता पुत्री के लिए क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर रात बीत जाने पर फिर वे ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिए खड़े थे, कितने ही मनुष्यों के पद–शब्द सुन ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए।

ममता ने पूछा– "यह क्या है पिताजी?"

"तेरे लिए बेटी, उपहार है।" यह कहकर चूड़ामणि ने आवरण उलट दिया। सुवर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी...

"इतना स्वर्ण! यह कहाँ से आया?"

"चुप रहो ममता! ये तुम्हारे लिए हैं।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी! यह अर्थ नहीं, अनर्थ है। लौटा दीजिए। पिताजी! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे?"

'इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी; किसी भी दिन शेरशाह रोहतास पर अधिकार कर सकता है। उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिए बेटी!"

"हे भगवान्! तब के लिए! विपद् के लिए इतना आयोजन! परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस? पिताजी, क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके? असम्भव है। फेर दीजिए पिताजी! मैं काँप रही हूँ-उसकी चमक आँखों को अन्धा बना रही है।"

'मूर्ख है'-कहकर चूड़ामणि चले गये।

दूसरे दिन जब डोलियों का तांता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक् - धक् करने लगा। वह अपने को न रोक सका। उसने जाकर रोहतास-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा- "यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गयी। तलवारें खिंचीं, ब्राह्मण मंत्री मारा गया और राजा, रानी तथा कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गयी ममता। डोली में भरे हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फैल गये, पर ममता न मिली।

काशी के उत्तर धर्मचक्र बिहार मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्त्ति का खंडहर था । भग्नचूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी की चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।"...

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मंद प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा, परन्तु व्यक्ति ने कहा–

"माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?" स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा–युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।

"क्या शेरशाह से?" स्त्री ने अपने होंठ काट लिये।

"हाँ, माता!"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो। वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहीं। जाओ, कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है–इतना थका हुआ हूँ, इतना।", कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आयी; उसने जल दिया। मुगल के प्राण की रक्षा हुई। वह सोचने लगी–

"सब विधर्मी दया के पात्र नहीं–मेरे पिता का वध करने वाले आततायी!" घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा–"माता! तो फिर मैं चला जाऊँ?"

स्त्री विचार कर रही थी–"मैं ब्राह्मण हूँ, मुझे तो अपने धर्म–अतिथि देव की उपासना का पालन करना चाहिए; परन्तु यहाँ..... नहीं–नहीं, यह सब विधर्मी दया के पात्र नहीं; परन्तु यह दया तो नहीं कर्त्तव्य करना है। तब?"

मुगल अपनी तलवार टेक कर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा–''क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो।"

"छल! नहीं, तब नहीं स्त्री! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा! जाता हूँ, भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा–''यहाँ कौन दुर्ग है! यही झोंपड़ी है, जो चाहे ले ले। मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना पड़ेगा।" वह बाहर चली आयी और मुगल से बोली, "जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राम्हण–कुमारी हूँ, सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ?"

मुगल ने चन्द्रमा के मंद प्रकाश में वह महिमामय मुखमंडल देखा। उसने मन ही मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गयी। भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

प्रभात में खंडहर की संधि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकल कर उस पथिक ने कहा– 'मिरजा! मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार–ध्वनि से वह प्रान्त गूँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा–"वह स्त्री कहाँ है? उसे

खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृगदाव में चली गयी। दिन भर उसमें से न निकली। संध्या को जब उनके जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा था– "मिरजा! उस स्त्री को मैं कुछ भी न दे सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि विपत्ति में मैंने यहाँ आश्रम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"– इसके बाद वे चले गये।

चौसा के मुगल–पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गये। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का प्रभाव था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिए गाँव की दो–तीन स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सब के सुख–दु:ख की सहभागिनी रही।

ममता ने जल पीना चाहा। एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार पर दिखायी पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा "मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी। अब किससे पूछें कि एक दिन शाहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा– "बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक–रुक कर कहा– "मैं नहीं जानती वह शाहंशाह था या साधारण मुगल; पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा था। मैंने सुना था, वह मेरा घर बनाने की आज्ञा दे गया था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खुदवाने के डर से भयभीत रही थी।"

"भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल; मैं अपने चिर विश्राम–गृह में जाती हूँ।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण–पक्षी अनन्त में उड़ गये।

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया–

''सातों देशों के नरेश हुमायूँ ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उसकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मन्दिर बनवाया।''

पर उसमें ममता का कहीं नाम न था।

शब्दार्थ

दुहिता–बेटी, पुत्री। निराश्रय–बेसहारा, असहाय

बेसुध–बेहोश, अचेत। विकीर्ण–फैला हुआ

उत्कोच–रिश्वत, घूस। परमपिता–ईश्वर

ताँता–कतार, पंक्ति। भग्नचूड़ा–टूटा हुआ शिखर

खंडहर–किसी टूटे–फूटे या गिरे हुए मकान का अंश

चंद्रिका–चाँदनी। विपन्न–दुर्दशाग्रस्त, विधर्मी–धर्मद्रोही, धर्मभ्रष्ट, अधर्म करने वाला, टेककर–उठाकर।

मृगदाव–काशी के पास 'सारनाथ' नामक स्थान

कपाट–किवाड़। यमालय–मृत्युलोक

सीपी–कड़े आवरण के भीतर रहने वाला शंख, घोंघा आदि की जाति का एक जलजन्तु।

प्रश्न और अभ्यास

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर १०–१२ वाक्यों में दीजिए:

(क) 'ममता' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) ममता रोहतास दुर्ग छोड़कर कहाँ और क्यों चली गई?

(ग) ममता किस बात को लेकर द्वंद्व में पड़ जाती है और क्यों?

(घ) ममता के चरित्र की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

(ङ) इस कहानी से आपको क्या प्रेरणा मिलती है?

(च) 'ममता' कहानी का उद्देश्य क्या है?

भगवतीचरण वर्मा

(जन्म: ३० अगस्त १९०३–मृत्यु: ५ अक्तूबर १९८८)

भगवती चरण वर्मा का जन्म राफीपुर गाँव में हुआ। इलाहबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. और एल–एल.बी. की परीक्षा पास करने के बाद, उन्होंने वकालत शुरू की, परंतु उसमें मन नहीं लगा। लिखने–पढ़ने की ओर ध्यान गया। कुछ दिनों 'विचार' नामक साप्ताहिकी का प्रकाशन–सम्पादन किया। फिर आकाशवाणी के कई केन्द्रों में कार्य किया। फिल्म कॉर्पोरेशन, कलकत्ता और मुंबई में फिल्म–कथालेखन भी किया। बाद में १९५७ से मृत्यु पर्यन्त स्वतंत्र साहित्यकार के रूप में लेखन–कार्य किया।

साहित्य की ओर वर्मा जी की प्रवृत्ति बचपन से ही थी। सातवीं कक्षा में पढ़ते समय उनकी कुछ कविताएँ कानपुर के दैनिक 'प्रताप' में प्रकाशित हुई थीं। १९३१ में वे कथा–लेखन की ओर अगसर हुए और शीघ्र ही उन्हें प्रतिष्ठा मिली। 'चित्रलेखा' उपन्यास प्रकाशित होने के बाद कथाकार के रूप में उनकी ख्याति बढ़ गई। यह एक ऐसा बिरला उपन्यास है जिसकी लोकप्रियता काल की सीमा को भी लाँघ गई।

प्रमुख कृतियाँ

उपन्यास : चित्रलेखा, भूले बिसरे चित्र, प्रश्न और मरीचिका, टेढ़े मेढे रास्ते, सामर्थ्य और सीमा, सबहिं नचावत राम गोसाईं।

कहानी संग्रह: मेरी कहानियाँ, मोर्चाबंदी।

कविता संग्रह: मधुकण, प्रेम संगीत, मानव,

नाटक : मेरे नाटक।

'कुँवर साहब का कुत्ता' वर्मा जी की श्रेष्ठ कहानियों में से है। हास्य–

व्यंग्य शैली के जरिए मानव जीवन की कुरूपता को इसमें दिखाया गया है। रईसवर्ग के मिथ्याडंबर और दोगलेपन का पर्दाफास हुआ है। कुँवर साहब और उनके अमीर मेहमान ऐसे शोषक और अमानवीय चरित्र हैं जो अपने गुलामों को कुत्ते से भी बदतर मानते हैं। कुत्ते पालना उनकी प्रतिष्ठा का सूचक है, परंतु अपने गुलामों पर बेवजह हाथ उठाना, और उन्हें बेगारी पर खटाना उनका हक है। यदि कोई इस बात की शिकायत कर दे या फिर उनके सामने बोल दे तो नमकहराम बन जाता है। सच तो यह है कि भगवान ने प्रत्येक मनुष्य को एक प्रकार का ही हाड़–मांस दिया है, भावनाएँ दी हैं तथा उचित–अनुचित का ज्ञान भी दिया है। अपने मतलब और अभिमान के लिए दूसरे इन्सानों को गुलाम बनाकर रखना सरासर अन्याय है। परंतु साम्यवाद का सिद्धान्त बघारने वाले कुँवरसाहब इसे समझ नहीं पाते। मैकू धोबी के गधे का कोई दोष न था उसे अपनी गोलियों का निशाना बना दिया। गधे ने उनके अलसेशियन को दुलत्ती से मार गिराया था। सच तो यह है कि अलसेशियन के आक्रमण से अपनी सुरक्षा के लिए गधे ने दुलत्ती का सहारा लिया। ऐसा करते हुए कुँवर साहब गरीबों और गुलामों पर अपना दबदबा बनाये रखते हैं।

इस प्रकार वर्माजी पाठकों को यह संदेश देना चाहते हैं कि गरीबों के प्रति अमानवीय व्यवहार उचित नहीं है। इससे समाज में वर्गसंघर्ष की स्थिति पैदा होगी जो किसी के हित में नहीं है। इसलिए सबके साथ मनुष्योचित व्यवहार किया जाना एक स्वस्थ समाज के लिए जरुरी है।

कुँवर साहब का कुत्ता

अगर आपके पास रुपया है तो आप बड़े मजे में कुत्ता पाल सकते हैं, कुत्ता ही क्यों, घोड़ा, भालू, शेर सभी कुछ पाल सकते हैं। यही नहीं बल्कि आप अपने मकान को जू बना सकते हैं और आपकी ओर कोई उँगली नहीं उठा सकता। मानी हुई बात है कि मुझे हरीश का कुँवर साहब और उनके कुत्तों को गालियाँ देते हुए, गांधीवाद से लेकर साम्यवाद तक के सिद्धातों पर घण्टे–भर तक व्याख्यान देना बुरा ही लगा। मैं तो कहता हूँ कि अगर आदमी हो तो निरंजन–सा हो! निरंजन को आप नहीं जानते, दुबला–पतला–सा नवयुवक है, तीन साल हुए बी.ए. पास किया था। पर अभी तक बेकार है। संतोषी आदमी है, साथ ही अथक परिश्रम करने में विश्वास करता है। एक दिन कुँवर साहब के यहाँ से लौटकर (कुँवर साहब के यहाँ वह नौकरी की तलाश में गया था) उसने मुझसे बड़ी गम्भीरतापूर्वक कहा था, "भाई परमेश्वरी, अच्छा होता यदि भगवान ने मुझे कुंवर साहब का कुत्ता बनाकर पैदा किया होता! ऐसी हालत में मुझे तीन समय अच्छे से अच्छा खाना तो मिलता–गोश्त, दूध, बिस्कुट सभी–कुछ। और फिर एक नौकर, एक मकान और देखभाल करने के लिए एक डाक्टर भी मैं पाता। और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं मौका–बेमौका कुँवर साहब तथा कुँवरानी साहिबा का मुँह भी चाट लेता!"

निरंजन के अन्तिम वाक्य पर मैंने उसे डाँटना चाहा, पर निरंजन की उम्र का ख्याल करके चुप ही रह जाना पड़ा। कुँवर साहब शौकीन रईस हैं, और उनके शौकों में मुख्य स्थान कुत्तों के शौक को दिया जा सकता है। चूहे के बराबर से गधे के बराबर तक के कुत्ते आपको उनके यहाँ मिलेंगे। हर रंग के और हर शक्ल के। यह बतला देना अनुचित न होगा कि आदमियों की भाँति कुत्ते भी विलायती ही अच्छे समझे जाते हैं और

इसलिए आप ताज्जुब न करें, जब मैं आपसे यह कहूँ कि कुंवर साहब के सभी कुत्ते सात समुद्र पार करके हिन्दुस्तान को पवित्र करने आये थे। इन कुत्तों की संख्या करीब चालीस थी, जिनमें प्रत्येक कुत्ता लगभग एक हजार का था।

कुँवर साहब मेरे घनिष्ठ मित्र हैं और स्वभाव के अच्छे हैं। उनका आग्रह था कि मैं उनके यहाँ कुछ दिनों के लिए ठहरूँ। बड़े आदमी का निमन्त्रण पाने के लिए मैं सदा लालायित रहता हूँ। उस मौके का चूकना मैंने मुनासिब न समझा। उन दिनों कुँवर साहब के अन्य कई मेहमान आए थे, हर एक का मिजाज और हर एक का रहन–सहन अलग–अलग था। कुछ रईस थे और कुछ रईसों के कृपा–पात्र थे। दिन–भर गपबाजी होती थी और खेल होते थे।

संध्या के समय चाय पीकर हम लोग बैठे ही थे कि कुत्तों पर बातचीत चल पड़ी। कुँवर साहब यदि कवि नहीं हैं, तो कवि–हृदय अवश्य हैं। आकाश की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, ''ओह! कुत्ता जितना स्वामिभक्त प्राणी संसार में नहीं मिलेगा। पशु है, फिर भी वह मनुष्य से कहीं ऊँचा है। उसमें दगा, फरेब, कृतघ्नता, ये कभी न मिलेंगे। उसकी मूक स्वामिभक्ति अद्वितीय है।" और कुँवर साहब ने अपने अलसेशियन के सिर पर हाथ फेरा। "मैं सच कहता कहूँ, कुत्ते के बराबर मित्र संसार में कोई नहीं है। दुनिया में जब चारों ओर सूनापन मालूम होता है, प्रत्येक ओर नजर उठाकर देखने पर भी जब ऐसा कोई मनुष्य नहीं दिखलाई देता,जिसे हम अपना कह सकें,जिस पर हम विश्वास कर सकें, उस समय कुत्ता ही हमें अपने सबसे निकट दिखाई देता है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इन्सान सबसे अधिक स्वार्थी है, नमकहराम है।"

कुँवर साहब की बात समाप्त होते ही उनकी बगल में बैठे हुए दूसरे

सज्जन बोल उठे, "इसमें क्या शक है! वाकई यह सच है कि इन्सान सबसे अधिक नमकहराम है। आप लाख उसका हित कीजिए, लेकिन वह अपनी आदत से बाज नहीं आता। अभी साल-भर हुआ,एक दिन मैं जरा कुछ ज्यादा पी गया, आप जानते ही हैं कि कभी कभी ज्यादा हो ही जाया करती है, और जनाब, ज्यादा पी जाने के बाद मैंने खिदमतगार को गुस्से में मार दिया। कोई तलवार-बन्दूक तो मारी न थी, केवल हाथ से मारा था। लेकिन वह साला मरियल खिदमतगार मेरी मार बरदास्त न कर सका और उसे कुछ चोट आ गई। अब जनाब, उस साले का मैंने इलाज करवाया। सब कुछ उसके लिए किया, लेकिन इन कांग्रेस वालों के बरगलाने से वह साला पुलिस में रिपोर्ट करने जा रहा था। वह तो यों कहिए कि मैं था, मैंने साफ-साफ कह दिया कि अगर थाने तक पहुँचाने का इत्तिला मुझे मिली, तो खाल खिंचवा लूँगा और फिर उसकी क्या मजाल, जो वह थाने जाता। वरना और कोई दूसरा होता तो उस खिदमतगार ने उसे मुसीबत में डाल दिया होता! अब जरा गौर करें कि मेरा खिदमतगार पुश्त-दर-पुश्त से मेरे नमक पर पला था। अगर मैंने उसे थोड़ा-सा मार ही दिया, और वह भी तब जब मैं कुछ ज्यादा पी गया था, तो क्या उसे थाने की बात सोचनी चाहिए? लेकिन क्या किया जाए, नमकहरामी तो इन्सान की नस-नस में भरी है।"

दूसरे सज्जन के बाद तीसरे सज्जन ने अपना किस्सा सुनाया, ''भाई मेरी, समझ में नहीं आता कि क्या किया जाए। आए दिन ही इन आदमियों की नमकहरामी के सबूत मिलते रहते हैं। अभी महीना-भर हुआ कि कमिश्नर साहब मेरे इलाके में आए। उन दिनों जुताई हो रही थी और बेगारी लगे हुए थे। जरा गौर कीजिए कि कमिश्नर साहब ऐसे बड़े मेहमान की खातिर करना कोई साधारण बात तो है नहीं। रियासत के सभी अमले कमिश्नर साहब की खातिरदारी में लगे थे, और उसका

नतीजा यह हुआ कि उस दिन बेगारियों को चबेना देना भूल गये। अब आप समझिए कि अगर एक दिन बेगारियों को चबेना नहीं मिला, तो वह मर न जाते, और फिर कमिश्नर साहब की खातिरदारी की वजह से चबेना देना भूले थे! तो जनाब, जब कमिश्नर साहब चलने लगे, तो एक लौंडा उन बेगारियों के बीच से निकलकर कमिश्नर साहब के सामने खड़ा हो गया और ऐंड़ी-बेंड़ी शिकायतें करने लगा। वह तो मेरा मामला था, कमिश्नर साहब ने सुनी-अनसुनी कर दी और चले गए।''

"इसके बाद हुआ क्या?" दबी जबान में मैंने पूछा।

"होता क्या, साले पर वह मार पड़ी कि पन्द्रह दिन तक चारपाई सेंकता रहा। इसके बाद बेदखल कर दिया। अब कहीं भीख माँगता होगा, लेकिन मुझे तो आपको यह बतलाना था कि इन्सान कितना नमकहराम होता है।"

जितने लोग वहाँ बैठे थे, सबके सब इन बातों की ताईद करते थे। मुझसे न रहा गया। मैंने कुछ झल्लाकर कहा, "जी हाँ, नमकहरामी तो इन्सान के हक में पड़ी, लेकिन मुसीबत तो यह है कि भगवान ने प्रत्येक मनुष्य को एक प्रकार का ही हाड़-मांस दिया है,उसको भावनाएँ दी हैं, उसे अनुचित-उचित का ज्ञान दिया है। जब आप अपने को उस खिदमतगार या उस बेगारी के स्थान में रखें, तब आपको उसके दुख-दर्द का पता लगे। आप अपनी बराबरी वाले, बल्कि किन्हीं बातों में आपसे कहीं अधिक श्रेष्ठ मनुष्य को रोटी के दुकड़े का गुलाम बनाना चाहते हैं, यहाँ आप गलती करते हैं। आप ही लोगों के कारण साम्यवाद का प्रचार..."

एकाएक कुँवर साहब ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे सचेत कर दिया, मैं तो न जाने क्या-क्या कह जाता। मेरी उस बात से वहाँ बैठे हुए लोगों में

निस्तब्धता छा गई। लोग एक–दूसरे की ओर देखने लगे। कुँवर साहब ने कहा, "परमेश्वरी बाबू हम लोगों का मतलब ठीक तरह से नहीं समझते, इसीलिए वे क्रोध में कुछ उचित अनुचित कह गए। आप लोग उनकी बात का बुरा न मानिएगा।"

किसी ने इस पर कुछ नहीं कहा, सारा वातावरण एकाएक शुष्क तथा नीरस हो गया। लोग वहाँ से उठकर इधर–उधर टहलने चले गए, मैं अकेला सोचता रह गया।

मैं क्या सोचता रहा, मुझे याद नहीं; कितनी देर तक सोचता रहा, यह भी याद नहीं, पर इतनी याद है कि कुँवर साहब ने बड़े कोमल स्वर में मुझे सचेत करते हुए कहा, "परमेश्वरी बाबू! मैं जानता हूँ कि मेरे मित्रों के दृष्टिकोण से आप सहमत न होंगे,जबकि स्वयं मैं ही उस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ, पर उस हँसी–खुशी के वातावरण को नष्ट करके क्या आपने अच्छा काम किया? क्या आप समझते हैं कि आप यह सब कुछ कहकर उन लोगों के दृष्टिकोण को प्रभावित कर सके?"

कुँवर साहब की इस बात में सार था, इसका मैंने अनुभव किया। अपनी तेजी पर मुझे पश्चाताप हुआ। मैंने कुंवर साहब से कहा, "हाँ, इतना मानता हूँ कि मुझसे गलती हो गयी और उसके लिए मुझे खेद है। पर फिर भी आप स्वयं ही समझ सकते हैं कि उनकी बातों पर बुरा लगना ही चाहिए था, और मैं देवता तो हूँ नहीं कि मुझे क्रोध न आए।"

मुस्कराते हुए कुँवर साहब ने कहा, "आप ठीक कहते हैं, परमेश्वरी बाबू! मनुष्य मनुष्य है, और प्रत्येक मनुष्य बराबर है। आपका क्रोधित हो जाना स्वाभाविक ही था।" इतना कहकर कुँवर साहब ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे उठा लिया, "चलो, थोड़ा सा टहल आएँ।"

कुआँर का महीना था, संध्या सुहावनी थी। कुँवर साहब साम्यवाद के ही सिद्धान्तों का समर्थन कर रहे थे, और उनके पीछे–पीछ दो सिपाही बन्दूक लिए चल रहे थे। सूर्यास्त हो रहा था और आगे–आगे कुँवर साहब का अलसेशियन रास्ता दिखलाता हुआ चल रहा था।

खेतों को और बागों को पार करते हुए हम दोनों गाँव की सघन आबादी में पहुँचे। देहाती कुँवर साहब को देखकर खड़े हो जाते और हाथ जोड़कर 'अन्नदाता की दुहाई' बोलते थे, और कुँवर साहब मुझसे इस प्रकार बातें करते चल रहे थे कि मानो उन देहातियों का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है।

काफी दूर तक टहलकर हम लोग लौटे। उस अलसेशियन का साथ कहाँ छूट गया, यह नहीं याद; पर जब हम दोनों गाँव में लौटे, तो एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा।

मैकू धोबी कुँवर साहब के इलाके में ही पला और बसा था। बुड्ढा–सा आदमी, सारे बाल सफेद हो गए थे। उसकी हड्डी–हड्डी गिनी जा सकती थी और लोगों ने उसे सदा एक लंगोट ही लगाए देखा।

मैकू का खानदान काफी बड़ा था, उसकी बीवी और चार बच्चे और एक गधा। गधे के हौसले बढ़े थे, मैकू अपने बच्चे के समान ही उस गधे को भी रखता था। वह गधा मैकू की जीविका का सहारा था। रोज सुबह उस पर लादी लादी जाती थी। रोज शाम को लादी वापस लाता था। दिनभर वह घाट पर किलौलें करता था।

उस दिन लादी खुलने के बाद मैकू ने गधे को बाँध दिया था; पर उसने अपनी रस्सी तुड़ाई और चहलकदमी की ठानी। एकाएक कुँवर साहब के अलसेशियन की नजर उस गधे पर पड़ी। या तो अलसेशियन को संध्या के समय गधे की चहलकदमी करने की अनधिकार चेष्टा पर बुरा लगा,

या फिर उसने गधे से कुछ खिलवाड़ करना चाहा। कारण जो कुछ रहा हो, पर इतना निश्चित है कि कुंवर साहब के कुत्ते ने गधे का पीछा किया। गधा कुछ दूर तक भागा और एकाएक रूक गया। उसे शायद यह याद हो आया कि संसार में सबको शान्तिपूर्वक रहने का समानाधिकार प्राप्त है और भागना कायरता है। कायर को संसार में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।

गधे ने अलसेशियन का सामना किया, सीधे–सादे ढंग से। उसकी मुद्रा साफ कह रही थी, ''म्यां, क्यों सताते हो, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? आखिर तुम्हारा इरादा क्या है? तुम्हारे मालिक कुँवर हैं, होंगे। अपने राम को इसकी कोई चिन्ता नहीं। अपने राम तुमसे जरा भी दबनेवाले नहीं।"

गधा तो गधा है–अलसेशियन को उसका यह व्यवहार तनिक भी अच्छा नहीं लगा। वह कुँवर साहब का कुत्ता था, जर्मनी से आया था। अहिंसा पर उसे रत्ती–भर विश्वास न था, साथ ही अपने अधिकार का उसे गर्व था। गधे के इस अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रभाव उस अलसेशियन पर ऐसा पड़ा जैसा कांग्रेस वालंटियर के बैठ जाने का प्रभाव लाठी–चार्ज के लिए तैयार पुलिस वाले पर पड़ता। उसने गधे पर धावा बोल दिया। पर गधा तो आदमी है नहीं, उसका सत्याग्रह दुराग्रह में परिणत हो गया। इसके पहले कि अलसेशियन के तेज दाँत उसके शरीर में गड़ें, वह घूमा और उसने बिजली की भाँति अपनी दुलत्ती का पूरा प्रयोग किया। एक भारी गुर्राहट के साथ कुत्ता धराशायी हुआ, आँखें बन्द और मुँह से खून निकलता हुआ। गाँववाले दौड़ पड़े, शोर मच गया कि मैकू के गधे ने कुँवर साहब के कुत्ते को मार डाला।

जब हम लोग लौटे, तब अलसेशियन अन्तिम साँस ले रहा था। कुँवर साहब की आवाज सुनते ही अलसेशियन ने एक बड़ी ही करूण कातर

दृष्टि से कुँवर साहब को देखा और फिर सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं।

गधा वहीं पर खड़ा था, अपनी विजय पर छाती फुलाए। कुँवर साहब ने लोगों से किस्सा सुना, खिदमतगार से उन्होंने बन्दूक ली और दो गोलियाँ उन्होंने गधे के मत्थे में दाग दीं। गधा गिर गया। नौकरों से कुत्ता उठवाकर वे अपने महल की ओर चले गए, मैं वहीं रह गया।

उस समय मैंने मैकू को देखा; मैकू को ही नहीं, उसकी बीवी को, उसके चार बच्चों को। गधे की मृत्यु का समाचार सुनकर सबके सब बेतहाशा भागते हुए आए–गधे को घेरकर सब के सब खड़े हो गए। वे रो रहे थे, सबके सब बुरी तरह रो रहे थे, मानों उनका कोई आत्मीय मर गया हो। उस रोज मैकू के यहाँ खाना नहीं बना।

मैं लौटा। कुँवर साहब और उनके मेहमान मैदान में बैठे थे। लोगों के सामने शरबत के गिलास थे। कुँबर साहब बोल रहे थे और उनका सेक्रेटरी लिख रहा था, "पन्द्रह सौ रूपये भेज रहा हूँ। जिस अलसेशियन का फोटो आपने भेजा था, उसे खरीदकर भेज दें।"

शब्दार्थ

जू–चिड़ियाघर। मौका–बेमौका–समय–असमय। रईस–अमीर, धनी। मुनासिब–ठीक, उचित । मेहमान–अतिथि। मिजाज–स्वभाव, प्रकृति। कृतघ्नता–किसी से मिले हुए उपकार को भूल जाना या किसी उपकारी व्यक्ति के खिलाफ कार्य करना।

सूनापन–तन्हाई, शून्यता

नमक हराम–धोखेबाज, कृतघ्न। दावे के साथ–दृढ़तापूर्वक। वाकई–निश्चित रूप से। आदत–प्रकृति, अभ्यास । खिदमतगार–सेवक, नौकर।

मरियल–बहुत कमजोर। इलाज–चिकित्सा। इत्तिला–खबर, सूचना। खाल–चमड़ा। मुसीबत–विपत्ति, संकट। पुश्त–दर–पुश्त–पीढ़ी–दर–पीढ़ी, वंश–परंपरा। सबूत–प्रमाण। रियासत–राज्य। अमले–सरकारी कर्मचारी। नतीजा–परिणाम। जुताई–जोतने का काम या भाव, जोतने की मजदूरी । बेगारी–बिना मजदूरी लिए काम करनेवाला व्यक्ति। चबेना–भुना हुआ अन्न जो चबाकर खाया जाता है। ऐंडी–बेंडी शिकायतें–उल्टा–सीधा अभियोग। दबी जवान– धीमी आवाज।

चारपाई सेंकता रहा–खटिया से उठ नहीं पाया था, खटिया पर पड़ा रहा

बेदखल करना–काम से निकाल देना

ताईद–तरफदारी, अनुमोदन, समर्थन। निस्तब्धता–चुप्पी, नीरवता

खेद–अफसोस। कुआँर का महीना–अश्विन मास

साम्यवाद–वह सिद्धांत जो यह निर्देश करता है कि सब मनुष्यों के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं तथा अमीर एवं गरीब का भेद संसार से उठजाना चाहिए, समानतावाद।

देहाती–ग्रामीण। खानदान–घराना, कुल

लादी–पशु पर लादी हुई गठरी या बोझ

कायरता–भीरूता। इरादा–उद्देश्य, लक्ष्य

वालंटियर–स्वयंसेवक। धावा बोलना–आक्रमण करना

दुराग्रह – अनुचित हठ

गुर्राहट–डराने के लिए कुत्ते–बिल्ली आदि का गंभीर शब्द करना।

दुलत्ती– घोड़े आदि चौपायों का पिछले दोनों पैरों को उठाकर मारना, बेतहाशा–तेजी से घबराकर बिना सोचे–समझे।

दुहाई–विजय घोषणा करना।

प्रश्न-अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दस-बारह वाक्यों में दीजिए :

(क) निरंजन कुँवर साहब का कुत्ता बनना क्यों चाहता था?

(ख) कुँवर साहब किस-किस प्रकार के कुत्ते पाला करते थे?

(ग) कुत्तों के बारे में कुँवर साहब का विचार क्या था?

(घ) "मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इन्सान सबसे अधिक स्वार्थी है, नमकहराम है"-क्या कुँवरसाहब का ऐसा कथन सही है?

(ङ) 'कायर को संसार में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है'- तर्क सहित उत्तर दीजिए।

(च) इन्सान की नमकहरामी के बारे में दूसरे सज्जन ने क्या कहा?

(छ) गधे और अलसेशियन की लड़ाई के जरिए कहानीकार क्या बताना चाहते हैं?

(ज) गधे को गोलियों का निशाना बनाया जाना क्या न्याय संगत है- सतर्क उत्तर दीजिए।

(झ) क्या सचमुच कुँवर साहब साम्यवाद के समर्थक हैं? तर्क सहित अपने विचार लिखिए।

(ञ) प्रस्तुत कहानी में छिपे व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।

उदय प्रकाश

(जन्म १ जनवरी १९५२)

उदय प्रकाश का जन्म मध्यप्रदेश के शहडोल (अब अनूपपुर) जिले के सीतापुर गाँव में हुआ। उन्होंने १९७४ में सागर विश्वविद्यालय से एम्.ए. (हिन्दी) तथा १९७६ में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पी–एच्.डी. की डिग्री हासिल की। १९७८ में जे.एन्.यू. में अध्यापना की। फिर १९८० में मध्यप्रदेश के संस्कृति–विभाग के अधिकारी बने। आगे चलकर 'दिनमान' और 'सण्डे मेल' पत्रिकाओं के सह–सम्पादक बने। १९९० में दूरदर्शन में भी काम किया। १९९३ से वे पूर्ण रूप से साहित्य सृजन में समर्पित रहे हैं।

उदय प्रकाश एक कवि और कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित तो हैं ही, साथ ही एक कुशल संपादक, प्रशासक, अनुवादक, टी.वी. निर्देशक, शोधकर्ता भी हैं। अपनी रचनाओं के लिए उन्हें कई पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा मेमोरियल एवार्ड़ (१९९०) हिन्दी अकादमी का साहित्यकार सम्मान (१९९९) आदि मिल चुके हैं।

प्रमुख कृतियाँ

कविता–संग्रहः अबूतर–कबूतर, रात में हारमोनियम, एक भाषा हुआ करती है।

कहानी–संग्रहः दरियाई घोड़ा, तिरिछ, और अंत में प्रार्थना, पॉल गोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की, दत्तात्रेय के दु:ख, मोहनदास, अरेबा परेबा, मैंगोसिल

निबंध, समालोचना और साक्षातकारः ईश्वर की आँख, नई सदी का पंचतंत्र, अपनी उनकी बात

'अपराध' उदय प्रकाश की एक अच्छी कहानी है। इसमें एक बच्चे के बचपन की एक अविस्मरणीय घटना का वर्णन है। बड़ा भाई पोलियो का शिकार है। अपने छोटे और कमजोर भाई से प्यार भी करता है और उसका बड़ा ख्याल भी रखता है। हार की परवाह किए बिना उसे अपने खेलों में शामिल करता है। परंतु एक दिन बिना पाली बाले खड़ब्बल खेल में उसे शामिल न किए जाने का गुस्सा बच्चा अपने भाई पर उतारता है। उसमें भाई के प्रति ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना पैदा होती है। जब वह गुस्से से खड़ब्बल को एक पत्थर पर पटकता है, तब अचानक खड़ब्बल चट्टान से टकराकर उछलता है और उसके माथे पर लगता है। माथे से खून बहता है। इससे उसे अपने भाई को अपनी उपेक्षा का दंड देने का मौका मिल जाता है। पिता–माता से भाई की झूठी शिकायत करता है और पिताजी के हाथों निर्दोष भाई को पिटवाता है। भाई के निर्दोष होने की बात नहीं सुनी जाती। मार खाते समय बच्चे की ओर भाई की कातर आँखें बचाव की याचना करती हैं। यह घटना वर्षों पुरानी हो जाती है। बच्चे के पिता–माता अब नहीं रहते। बच्चा अब बड़ा हो जाता है, परंतु उसकी स्मृति में बीती घटना आती रहती है। बार – बार भाई की वे कातर आँखें उसे बेचैन कर डालती हैं। उसमें अपराधबोध पैदा होता है। अपनी गलती की सजा हर पल झेलता रहता है।

कहानीकार इस कथा के जरिए पाठकों से यह आग्रह करते हैं कि जीवन में इस प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए जिससे कि जिन्दगी भर पछतावे की आग में जलना पड़े।

अपराध

मेरे भाई मुझसे छह साल बड़े थे। आश्चर्य था कि पूरे गाँव में सभी लड़के मुझसे छह वर्ष बड़े थे। मैं इसीलिए सबसे छोटा था और अकेला था। सब खेलते तो उनके पीछे मैं लग जाता।

मेरे भाई बचपन से अपाहिज थे। उनके एक पैर को पोलियो हो गया था। लेकिन वे बहुत सुन्दर थे। देवताओं की तरह। वे आसपास के कई गाँवों में सबसे अच्छे तैराक थे और उनको हाथ के पंजों की लड़ाई में कोई नहीं हरा सकता था। घूँसे से नारियल और ईंटे तोड़ देते थे।

जबकि मैं दुबला–पतला था। कमजोर और चिड़चिड़ा। मुझे अपने भाई से ईर्ष्या होती थी क्योंकि उनके बहुत सारे दोस्त थे।

मैं सबसे छोटा था इसीलिए मैं भाई के लिए एक उत्तरदायित्व की तरह था। वे मुझसे प्यार करते थे और मेरे प्रति उनका रूख एक संरक्षक की जिम्मेदारी जैसा था।

सब खेलते और मैं छोटा होने के कारण अकेला पड़ जाता तो भाई आकर मेरी मदद करते। जोड़ी और पालीवाले कई खेलों में वे मुझे अपनी पाली में शामिल कर लेते थे। कोई दूसरा लड़का अपनी पाली में मुझे शामिल करके हार का खतरा नहीं उठाना चाहता था। अकसर भाई मेरी वजह से ही हारते। फिर भी वे मुझसे कभी कुछ नहीं कहते थे। मैं उनकी जिम्मेदारी था और वह उसे निभाना चाहते थे। जहाँ तक मुझे याद है, उन्होंने कभी मुझे नहीं मारा।

जो कुछ मैं बताने जा रहा हूँ उसका सम्बन्ध भाई और मुझसे ही है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण घटना है। ऐसी घटना जो जीवन–भर आपका साथ

नहीं छोड़ती और अक्सर स्मृति में, बीच–बीच में, कहीं अचानक सुलगने लगती है। किसी अँगारे की तरह।

हुआ उस दिन यह कि मैं भाई के साथ खेलने गया। उस दिन बारिश हो चुकी थी और शाम की ऐसी धूप फैली हुई थी जो शरीर में उल्लास भरा करती है। ऐसे में कोई भी खेल बहुत तेज, गतिमय और सम्मोहक हो जाता है।

सभी लड़के खड़ब्बल खेल रहे थे। लकड़ी की छोटी–छोटी डण्डियाँ हर लड़के के पास थीं। पूरी ताकत से खडब्बल को जमीन पर, आगे की ओर गति देते हुए, सीधे मारा जा रहा था। ताकत और संवेग से नम धरती पर गिरा हुआ खडब्बल गुलाटियाँ खाते हुए बहुत दूर तक जाता था।

मुझमें न इतनी ताकत थी, न मैं इतना बड़ा था कि खड़ब्बल उतनी दूर तक पहुँचाता, जबकि वहाँ एक होड, एक प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो चुकी थी। कोई भी हारना नहीं चाहता था। यह एक ऐसा खेल था जिसमें कोई पाली नहीं होती, कोई किसी का जोड़ीदार नहीं होता। हर कोई अपनी अकेली क्षमता से लड़ता है।

भाई भी उस खेल में डूब गए थे। वे कई बार पिछड़ रहे थे, इसलिए गुस्से और तनाव में और ज्यादा ताकत से खड़ब्बल फेंक रहे थे।

वे मुझे भुला चुके थे। और मैं अकेला छूट गया था। छह वर्ष पीछे। कमजोर। उस दिन, उस खेल में शामिल होने के लिए मुझे छह वर्षों की दूरी पार करनी पड़ती, जो मैं नहीं कर सकता था।

भाई जीतने लगे थे। उनका चेहरा खुशी और उत्तेजना में दहक रहा था। उन्होंने एक बार भी मेरी ओर नहीं देखा। वे मुझे पूरी तरह भूल चुके थे।

मुझे पहली बार यह लगा कि मैं वहाँ कहीं नहीं हूँ।

मुझे रोना आ रहा था और भाई के प्रति मेरे भीतर एक बहुत जबर्दस्त प्रतिकार पैदा हो रहा था। मैं अपने खड़ब्बल को, अकेला अलग खड़ा हुआ एक पत्थर पर पटक रहा था। मैं ईर्ष्या, आत्महीनता, उपेक्षा और नगण्यता की आँच में झुलस रहा था।

तभी अचानक मेरा खड़ब्बल चट्टान से टकराकर उछला और सीधे मेरे माथे पर आकर लगा। माथा फूट गया और खून बहने लगा। मैं चीखा तो भाई मेरी ओर दौड़े। खेल बीच में ही रुक गया था।

''क्या हुआ? क्या हुआ?'' भाई घबरा गए थे और मेरे माथे को अपनी हथेली से दबा रहे थे। मेरा गुस्सा मिटा नहीं था। मैं भाई को अपनी उपेक्षा का दण्ड देना चाहता था।

मैंने भाई को झटक दिया और खुद को छुड़ाकर घर की ओर भागा। भाई डर गए थे और दौड़कर मुझे मनाना चाहते थे। लेकिन उनका दायाँ पैर पोलियो का शिकार था इसलिए वे मेरे साथ दौड़ नहीं सकते थे। उन्होंने लँगड़ाकर दौड़ने की कोशिश भी की लेकिन वे गिर गए।

मेरी कमीज खून से भीग गई थी। सिर के बाल खून से लिथड़ गए थे। माँ मुझे देखकर डर गई और रोने लगी। पिताजी घबराए हुए घाव पर पावडर डालने लगे।

मैंने रोते हुए माँ को बताया कि मुझे भाई ने खड़ब्बल से मारा है। तभी मैंने देखा कि भाई लँगड़ाते हुए चले आ रहे थे। अकेले। उनको आशंका हो गई होगी। वे डरे हुए रहे होंगे।

भाई बार-बार कहते रहे कि मैंने इसे नहीं मारा, लेकिन पिताजी उन्हें पीटे जा रहे थे। भाई रो रहे थे। वे सच बोल रहे थे। लेकिन उन्हें सजा मिल रही थी।

मैंने भाई का चेहरा देखा। वे मेरी ओर देख रहे थे। उनकी आँखें लाल थीं और उनमें करुणा और कातरता थी, जैसे वे मुझसे याचना कर रहे हों कि मैं सच बोल दूँ। लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। उन्हें सजा मिल चुकी थी। फिर इतनी जल्द बात को बिल्कुल बदलना मुझे सम्भव भी नहीं लग रहा था। क्या पता, पिताजी फिर मुझे ही मारने लगते। मैं डर गया था।

यह घटना वर्षों पुरानी है। लेकिन भाई की वे कातर आँखें अब भी मुझे कभी-कभी घूरने लगती हैं। याचना करती हुईं, सच बोलने की भीख माँगती हुई। मेरी स्मृति में जब भी वे आँखें जाग उठती हैं, मेरी पूरी चेतना ग्लानि, बेचैनी और अपराध-बोध से भर उठती है।

मैं अपने इस अपराध के लिए क्षमा माँगना चाहता हूँ। इस अपराध की सजा पाना चाहता हूँ। लेकिन अब तो माँ और पिताजी भी नहीं हैं, जिनसे मैं यह बताऊँ कि उस दिन ठीक-ठीक क्या हुआ था।

भाई ही मुझे क्षमा कर सकते हैं, जिन्हें मेरे झूठ का दण्ड भोगना पड़ा। उनसे मैंने इस घटना का जिक्र भी करना चाहा, लेकिन उन्हें वह घटना याद ही नहीं। वे इसे बिल्कुल, पूरी तरह भूल चुके हैं।

तो इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कौन कर सकता है? क्या यह ऐसा अपराध नहीं है जिसके बारे में लिया गया जो निर्णय था, वह गलत और अन्यायपूर्ण था, लेकिन जिसे अब बदला नहीं जा सकता?

और क्या यह ऐसा अपराध नहीं है, जिसे कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता? क्योंकि इससे मुक्ति अब असम्भव हो चुकी है।

शब्दार्थ

अपाहिज–काम न करने योग्य, लूला–लंगड़ा, पंगु । उत्तरदायित्व–जिम्मेदारी। संरक्षक–अभिभावक, देखभाल करनेवाला । रूख–मनोभाव। सम्मोहक–लुभावना, आकर्षक । पाली–पारी, बारी। प्रतिकार–बदले की भावना । नगण्यता– नीचता, हीनता। उपेक्षा–अनादर सजा–दण्ड। कातरता–दीनता। याचना–माँगना। ग्लानि–पछतावा

प्रश्न-अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दस–बारह वाक्यों में दीजिए।

(क) लेखक के बड़े भाई का स्वभाव कैसा था?

(ख) बड़े भाई लेखक के साथ अपनी जिम्मेदारी कैसे निभाते थे?

(ग) लेखक का माथा कैसे फूटा?

(घ) लेखक ने अपने माथा फूटने का दोष भाई पर क्यों लगाया? क्या ऐसा करना उचित था? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

(ङ) 'भाई की वे कातर आँखें अब भी मुझे कभी – कभी घूरने लगती हैं – इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए।

(च) लेखक के लिए अपने अपराध से मुक्ति पाना क्यों असम्भव हो चुका है?

व्याकरण

क्रिया

१. **परिभाषाः** जिस पद से किसी कार्य का करने या होने का बोध होता है, उसे क्रिया कहते हैं। जैसे - लिखना, पढ़ना, खाना, जाना आदि।

क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं। जैसे -लिख, पढ़, खा, आदि। धातु के साथ-ना लगाने से सामान्य क्रिया बनती है। जैसे - लिखना, पढ़ना, खाना, जाना आदि।

क्रियापद धातुओं से बनते हैं। संज्ञा और विशेषण से भी बनते हैं। जैसे-हाथ-हथियाना,चिकना-चिकनाना।

२. क्रिया के भेदः

(i) रचना के आधार पर क्रिया के भेदः

(क) मूल क्रिया- पढ़ना, देखना आदि। इनमें से कुछ मूल क्रिया भी सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं जो मूल क्रिया के बाद आते है जैसे-पढ़ सकना, देख पाना आदि।

(ख) संयुक्त क्रिया- मूल क्रिया के साथ सहायक क्रिया अथवा प्रेरणार्थक क्रिया।

सहायक क्रिया- जैसे-जा चुका। बह रहा है।

प्रेरणार्थक क्रिया- चलाना, पढ़ाना, कटवाना, कहलवाना आदि।

संयुक्त क्रिया के कुछ उदाहरणः

आज तेज हवा चल रही है। बारिश थम गई है। पक्षी घोंसलों में लौट चुके हैं। हमेशा सच बोलना चाहिए। उसे रातभर पढ़ना पड़ा। दीया जल रहा है। बच्चा गिर पड़ा आदि।

(ii) **कर्म के** आधार पर क्रिया के तीन भेद होते है- सकर्मक, अकर्मक, द्विकर्मक ।

क. सकर्मक _____ वाक्य में कर्म है।

ख. अकर्मक ____वाक्य में कर्म नहीं है या नहीं हो सकता।

ग. द्विकर्मक _____ वाक्य में दो कर्म हैं जैसे-माँ **बच्चे** को **खाना** खिलाती है।

(क) जिस वाक्य में कर्म पद का आना या उसके होने की संभावना है, उस वाक्य की क्रिया को सकर्मक क्रिया कहते हैं जैसे-राजेंद्र पुस्तक पढ़ता है। (पुस्तक कर्म है।)

राजेंद्र पढ़ता है। (राजेंद्र क्या पढ़ता है? उत्तर- पुस्तक/ पत्र/ लेख/ पत्रिका आदि कर्म आने की संभावना है।)

सकर्मक क्रियाएँः

पढ़ना-क्या पढ़ता है ? पत्र।

देखना-क्या देखता है ? टीवी।

खाना-क्या खाता है ? रोटी/फल आदि।

(ख) अकर्मक क्रिया- अपने साथ कोई कर्म नहीं ले सकती। जैसे- बच्चे दौड़ते हैं। बच्चे क्या दौड़ते हैं, किसको दौड़ते हैं आदि प्रश्न

पूछने पर कोई उत्तर नहीं आता। अतएव ये क्रियाएँ अकर्मक कहलाती हैं।

अकर्मक क्रियाएँः जाना, आना, तैरना, कूदना, हँसना, उठना, बैठना आदि।

(ग) द्विकर्मक क्रिया- जैसे-शिक्षक ने **छात्र** को **हिन्दी** पढ़ायी। इसमें दो कर्म हैं।

(iii) कार्य की पूर्णता के आधार परः

(क) समापिका क्रिया- यह वाक्य के अंत में आती है और वाक्य की समाप्ति की सूचना देती है।

सवेरा हो गया। वह चलता है।

(ख) असमापिका क्रिया- जहां वाक्य/कार्य अपूर्ण रहने की सूचना मिलती है।

जैसे-सब लोग मिलकर करते हैं। वह लौटकर आ गया। सुनी सुनाई बात पर विश्वास न करो।

प्रेरणार्थक क्रियाएँः

कर्ता सकर्मक, अकर्मक या द्विकर्मक क्रिया स्वयं करता है। न तो वह किसीसे प्रेरणा या सहायता लेता है, न किसी को देता है। लेकिन कुछ क्रियाएँ हैं जिनको करते समय कर्ता दूसरे को प्रेरणा या सहायता देता है अथवा किसी दूसरे से प्रेरणा या सहायता लेता है, उन्हें प्रेरणार्थक क्रियाएँ कहते हैं।

जैसे - माँ बच्चे को खिलाती है। (माँ कर्ता है। वह बच्चे को खाने की प्रेरणा देती है या सहायता करती है।)

शिक्षक ने छात्रों को खूब लिखवाया। इस प्रकार प्रेरणार्थक क्रिया के दो रूप होते हैं।

मूल क्रिया	**प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया**	**द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया**
लिखना	लिखाना	लिखवाना
खाना	खिलाना	खिलवाना
काटना	कटाना	कटवाना
पढ़ना	पढ़ाना	पढ़वाना
चलना	चलाना	चलवाना

जैसे- बच्चा चला।

माँ ने बच्चे को चलाया।

माँ ने बच्चे को **पिताजी से** चलवाया।

काल

क्रिया या काम जिस समय घटित होता है, उसको काल कहते हैं। कार्य हो चुका हो तो वह भूत या अतीत काल है। काम होने वाला है तो भविष्यत काल और अगर हो रहा है तो उसे वर्तमान काल कहते हैं। अतएव क्रिया के तीन काल हैं- १. **भूतकाल,** २. **वर्तमान काल** ३. **भविष्यत् काल**।

भूतकालः जब क्रिया घटित हो चुकी है। इसके छह भेद हैं-

१. **सामान्य भूतः** समय बीतने का बोध होता है पर निश्चित नहीं; जैसे-वर्षा हुई।

२. **आसन्न भूतः** काम अभी अभी समाप्त हुआ है।
जैसे-बारात आयी है। सबने खाना खाया है।

३. **पूर्ण भूतः** काम कब का समाप्त हो चुका है।
जैसे-मंत्री ने आदेश दिया था। आदमी गया था।

४. **अपूर्ण भूतः** शुरु हुआ पूर्ण हुआ या नहीं, पता नहीं।
जैसे-लड़का गाता था। अरुण लिख रहा था।

५. **संदिग्ध भूतः** काम पूरा हुआ या नहीं, पता नहीं चलता।
जैसे-उसने चोरी की होगी।
काम हो गया होगा।

६. **हेतुहेतुमद् भूतः** जब यह मालूम हो कि शर्त पूरी नहीं हुई तो काम पूरा न हो पाया।
जैसे-रमेश ने ठीक से पढ़ा होता तो पास हो गया होता।

वर्षा अच्छी होती तो फसल उतर जाती।

वर्तमान कालः क्रिया के जिस रूप से यह पता चलता है कि क्रिया का व्यापार वर्तमान समय में जारी है, उसे वर्तमान काल की क्रिया कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

१. **सामान्य वर्तमानः** कार्य का अभी होना, ऐसा बोध होता है।

जैसे-अमर खेलता है। बालक पढ़ते हैं।

सामान्य वर्तमान में चिरन्तन सत्य या स्थायी कार्य का बोध होता है।

जैसे- सूर्य पूरब में उगता है। वह हिन्दी जानता है।

२. **तात्कालिक वर्तमानः** कार्य जारी है, ऐसा बोध हो तो तात्कालिक वर्तमान होता है।

जैसे-लड़की पढ़ रही है। बच्चा खेल रहा है। राम भारत में रहता है/रह रहा है।

३. **संदिग्ध वर्तमानः** क्रिया के होने में जब संदेह का भाव प्रकट हो।

जैसे-वह पढ़ रहा होगा। मालती खेलती होगी। मोहन आता होगा।

४. **संभाव्य वर्तमानः** कार्य वर्तमान समय में होने की संभावना है।

जैसे-वह पढ़ता हो तो उसे तंग न करना। वह आया हो तो मेरा पता दे देना।

नोट (i) यहाँ ध्यान देने की बात है कि संदिग्ध वर्तमान में क्रिया का रूप 'होगा' रहता है और संभाव्य में 'हो'।

नोट (ii) कुछ लोग पूर्ण वर्तमान का भेद मानते हैं-जैसे-वह आया है। उसने खाया है। परंतु यह पूर्ण वर्तमान तो आसन्न भूत ही है।

भविष्यत् काल

क्रिया के जिस रूप से यह बोध होता है कि कार्य व्यापार आने वाले (भविष्य) समय में होगा, तो वह **भविष्यत् काल** है। इसके तीन भेद हैं।

१. **सामान्य भविष्यत्:** इससे पता चलता है कि कार्य आने वाले समय में होगा।

जैसे-मैं पाठ पढ़ूँगा। सुनिता कटक जायगी।

२. **संभाव्य भविष्यत्:** भविष्य में कार्य होने की संभावना है-

जैसे-संभव है कि मैं कल पुरी जाऊँ।

३. **हेतुहेतुमद् भविष्य:** भविष्य में किसी कार्य का होना दूसरे कार्य के होने पर निर्भर है।

जैसे-तुम आओ तो मैं जाऊँ। वह पढ़े तो पास हो जाए।

उपसर्ग और प्रत्यय

भाषा में नए शब्द बनाने के लिए कई तरीके अपनाये जाते हैं। इनमें से एक तरीका है शब्द के पहले कुछ शब्दांश जोड़ना। ये शब्दांश मूल शब्द के अर्थ को बदल देते हैं। इन शब्दांशों को उपसर्ग कहते हैं। जैसे 'हार' शब्द के पहले प्र आदि जोड़कर प्रहार, संहार, विहार, परिहार शब्द बनाए जाते हैं जिनका अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। लेकिन जो शब्दांश मूल शब्द के बाद जुड़ते हैं उनको प्रत्यय कहते हैं। जैसे मनुष्य-ता, चढ़-आई आदि। ये शब्दांश शब्द के अर्थ को बदलते नहीं, परंतु उनमें एक विशिष्टता पैदा करते हैं।

उपसर्ग शब्द के पहले लगते हैं तो प्रत्यय बाद में।

उपसर्ग-हिंदी में तीन प्रकार के उपसर्ग लगते हैं-

(क) संस्कृत के (ख) हिंदी के (ग) उर्दू के। नीचे इसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं-

संस्कृत उपसर्गः

उपसर्ग	**अर्थ**	**उदाहरण**
प्र	अच्छा	प्रगति, प्रबंध
परा	पीछे, उल्टा	पराजय, पराक्रम
अप	हीनता	अपकार, अपयश
सम्	अच्छी तरह	संग्रह, संहार
सु	अच्छा	सुगम, सुयश
निर्	नहीं, निषेध	निर्जन, निरादर

उत्	ऊपर, श्रेष्ठ	उत्तम, उद्योग
परि	पूर्णतया	परिणाम, परिक्रमा
प्रति	पास, व्याप्त	प्रतिध्वनि, प्रतिदिन
अधि	ऊपर	अधिकार, अधिपति
अभि	सामने, पास	अभियान, अभिशाप
अनु	पीछे	अनुगमन, अनुकरण
अव	नीचा, हीन	अवनति, अवतरण
अति	अधिक	अतिशय, अतिक्रम

उपसर्ग	**अर्थ**	**उदहारण**
नि	नहीं	निषेध, निवारण
दुर	बुरा	दुर्दशा, दुर्विनीत
वि	अधिक	विकास, विज्ञान
आ	समेत	आजन्म, आमरण
कु	बुरा	कुरूप, कुमार्ग

हिन्दी उपसर्गः

अ- अलग, अछूत, अजान, अथाह

अध- अधखिला, अधमरा, अधकचरा

अन- अनजान, अनपढ़, अनहोनी

औ- औगुन, औघट

दु- दुबला, दुबारा

स/सु- सपूत, सुजान

नि- निडर, निधड़क

बिन- बिनकाम, बिनमाँगा

भर- भरसक, भरपूर, भरपाई

उर्दू उपसर्गः

कम- (थोड़ा, हीन) कमजोर, कमउम्र

खुश- (अच्छा) खुशबू, खुशनसीब

गैर- (अलग, विशुद्ध) गैरहाजिर, गैरकानूनी

ना- (कम, अभाव) नाचीज, नाराज, नालायक

बद- (बुरा) बदनाम, बदबू, बदतमीज

बा- (सहित) बाकायदा, बाअदब, बाइज्जत

बे- (बिना) बेहोश, बेईमान, बेपरवाह

ला- (बिना) लापरवाह, लापता, लाचार

सर- (मुख्य) सरताज, सरपंच, सरदार

हम- (समान, साथ) हमउम्र, हमदर्द, हमसफर

हर- (प्रत्येक) हररोज, हरएक, हरदम

प्रत्यय

शब्दों के बाद जो नए शब्दांश जोड़े जाते हैं, उन्हें प्रत्यय कहा जाता है। जहाँ प्रत्यय जुड़ता है, वहाँ शब्द को नया अर्थ मिलता है। जैसे सुंदर (बालिका), सुंदरता, सौंदर्य (सुंदर होने का गुण)

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं-

१. **कृत् प्रत्यय-** यह धातु या क्रिया के साथ जुड़ते हैं। ऐसे प्रत्यय से बने शब्द कृदंत हैं। ऐसे शब्द संज्ञा या विशेषण होते हैं।

२. **तद्धित प्रत्यय-** ये अन्य शब्दों (संज्ञा, विशेषण आदि) के साथ जुड़ते हैं। ऐसे प्रत्यय से बने शब्द तद्धितांत कहलाते हैं। ये संज्ञा या विशेषण होते हैं। ये सभी प्रत्यय तीन स्रोतों से आते हैं- **संस्कृत, हिन्दी, उर्दू**।

१. कृत् प्रत्यय संस्कृत के-

अ- चर + अ = चर, सृप + अ = सर्प,
दिव् + अ = देव

अक- कृ + अक = कारक, पठ + अक = पाठक

अन- पठ् + अन = पठन, भुज् + अन = भोजन

अनीय- पूज् + अनीय = पूजनीय,
पठ् + अनीय = पठनीय

आ- पूज् + आ = पूजा

त (क्त)- कृ + त = कृत, मृत, सुप्त

तव्य- कृ + तव्य = कर्त्तव्य, वक्+तव्य =वक्तव्य

य-पूज् + य + पूज्य, खाद् + य = खाद्य,

गम् + य = गम्य

२. हिंदी/उर्दू के कृत् प्रत्ययः

अक्कड़-	भुलक्कड़, पियक्कड़
आ-	झूल + आ = झूला, ठेल + आ =ठेला
आन-	उड् +आन=उड़ान, मिल+आन = मिलान
आव-	बह + आव = बहाव, बच् +आव =बचाव
आवट-	लिख् + आवट = लिखावट,
	सजा + वट = सजावट
आवा-	दिख् + आवा = दिखावा, बुलावा, पछतावा
आई-	चढ् + आई =चढ़ाई, पढ् +आई =पढ़ाई
आऊ-	कम + आऊ = कमाऊ,
	बिक् + आऊ = बिकाऊ
आकू-	लड़् + आकू = लड़ाकू
आड़ी-	खेल् + आड़ी = खिलाड़ी
आलू-	झगड़् + आलू = झगड़ालू
आवना-	डर + आवना = डरावना, लुभावना
आहट-	घबरा + आहट = घबराहट, चिल्लाहट

इया-	घट् + इया = घटिया, बढ़िया
इयल-	अड़ +इयल = अड़ियल, मरियल, सड़ियल
ई-	धमक + ई = धमकी, हँसी, बोली
ऊ-	कमा +ऊ =कमाऊ, खा + ऊ = खाऊ
एरा-	बस + एरा = बसेरा, लुटेरा
औती-	काट +औती = कटौती, चुनौती
त-	खप् +त = खपत, बच + त = बचत
न-	चल् +न = चलन, ढक्कन, लेन-देन
नी-	कर् +नी = करनी, भरनी, होनी, चटनी
वना-	लुभा +वना = लुभावना,
	डर +वना = डरावना
वाला-	गाना + वाला = गानेवाला, पढ़नेवाला
सार-	मिलनसार
हार-	राख + हार = राखनहार,
	चाखनहार, होनहार

संस्कृत/हिन्दी/उर्दू के तद्धित प्रत्ययः

संस्कृत के-

अ-	कुरु + अ = कौरव, विष्णु +अ = वैष्णव
आलु-	दया + लु = दयालु, कृपा +लु = कृपालु
इक-	धर्म + इक = धार्मिक, दैनिक, ऐतिहासिक
इत-	आनंद + इत = आनंदित, पुष्पित
इमा-	लालिमा, गरिमा, लघिमा
ई-	गुणी, धनी
ईन-	कुल + ईन = कुलीन, ग्रामीण
ईय-	भारतीय, स्वर्गीय, प्रान्तीय
एय-	कौन्तेय, गांगेय, वैनतेय
ता-	दीनता, लघुता, सुंदरता
त्व-	सतीत्व, प्रभुत्व
मान-	शक्तिमान, बुद्धिमान
वान-	बलवान, गुणवान
य-	पण्डित + य = पाण्डित्य, औद्धत्य, औचित्य, माधुर्य आदि।

हिन्दी/उर्दू के तद्धित प्रत्ययः

आ-	भूख + आ = भूखा
आई-	भलाई, बुराई
आऊ-	उपजाऊ
आना-	रोजाना, ठिकाना, सालाना
आर -	लुहार, सुनार
आस-	मिठास, खटास
आहट-	कडवाहट, चिकनाहट
इया-	खटिया, लुटिया
ई-	खेती, खुशी
ईन-	रंगीन, शौकीन
ईला-	छबीला, रंगीला
ऊ-	पेटू
एरा-	चचेरा, अँधेरा, सँपेरा
ऐत-	डकैत, लठैत
ओला-	खटोला, सँपोला
ओं-	सैकड़ों, घंटों
खाना-	डाकखाना, दवाखाना
खोर-	आदमखोर, रिश्वतखोर
गर-	जादूगर, सौदागर
गी-	नाराजगी, मर्दानगी

च्ची-	तोपची, नकलची
दान-	कलमदान, मच्छरदान
दार-	दूकानदार, मजेदार
नाक-	खतरनाक, दर्दनाक
पन-	बचपन, पागलपन
पा-	बुढ़ापा, मोटापा
बाज-	दगाबाज,
मंद-	अकलमंद
वार-	उम्मीदवार, भाषावार
वाला-	खिलौनेवाला, फलवाला
हरा-	सुनहरा, दोहरा
हारा-	चूड़ीहारा, लकड़हारा
	आदि

प्रश्न और अभ्यास

व्याकरण

नीचे विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के नमूने दिए गए है। उनके आधार पर अभ्यास करना आवश्यक है।

१- सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए । प्रत्येक प्रश्न का मूल्य १ अंक है।

(i) जो शब्दांश शब्द के पहले आता है उसे क्या कहते हैं?
(क) अनुसर्ग (ख) परसर्ग (ग) उपसर्ग (घ) संसर्ग
(सही विकल्प है - उपसर्ग)

(ii) उपसर्ग लगने से किसका अर्थ एकदम बदल जाता है ?
(क) धातु का (ख) शब्द का (ग) वाक्य का
(घ) प्रसंग का

(iii) ''गति'' शब्द के पहले 'प्र' उपसर्ग जोड़ने से अर्थ क्या होगा ?
(क) अगति (ख) अच्छी गति
(ग) मंद गति (घ) अन्य गति

(iv) जो शब्दांश मूल शब्द के बाद जुड़ते हैं, उन्हें क्या कहते हैं?
(क) कृदंत (ख) प्रत्यय (ग) सर्वनाम (घ) अव्यय

(v) कृदंत प्रत्यय किस प्रकार के शब्दों के बाद आते हैं?
(क) संज्ञा (ख) सर्वनाम (ग) विशेषण (घ) धातु या क्रिया

(vi) तद्धित प्रत्यय कहाँ पर प्रयुक्त हो सकते हैं ?
(क) धातु के बाद (ख) संज्ञा/विशेषण शब्द के बाद
(ग) अव्यय पद के बाद (घ) जहाँ सुविधा हो

(vii) भूतकाल वहाँ होता है जहाँ क्रिया _ है।
(क) हो चुकी (ख) हो रही (ग) होगी (घ) नहीं होगी

(viii) क्रिया के कितने काल हैं ।
(क) एक (ख) दो (ग) तीन (घ) चार

नोटःऐसे प्रश्न बना कर उनके उत्तर लिखकर अभ्यास कीजिए।

संक्षेपण

संक्षेपण, संक्षिप्तीकरण, संक्षेपीकरण, संक्षेप लेखन, सार-लेखन एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। सारांश लेखन इससे भिन्न है। कारण संपृक्त विषय के मूल तथ्य को ही प्रस्तुत करना सारांश लेखन है। लेकिन किसी गद्यांश या पद्यांश के मुख्य भाव या विस्तार को छोड़े बिना उसे संक्षेप में लिखना सक्षेपण कहलाता है। यह अंग्रेजी शब्द प्रेसी का समानार्थी है जो वस्तुत: फ्रेंच भाषा के 'प्रसीडिएर' से आया है जिसका तात्पर्य प्रिसाइज या संक्षिप्त करने से है।

विस्तार से कही गई या लिखी गई किसी बात को कम शब्दों में कहना या लिखना एक कला है। किसी लम्बे भाषण, लंबा विवरण, विस्तृत वर्णन को समस्त तथ्य के साथ कम शब्दों में उपस्थापित करना उतना सहज नहीं होता। हाँ, सतत अध्ययन एवं अभ्यास से ही इस कला में निपुणता आ सकती है। मुख्यत: गद्यांश के सन्दर्भ में इसका प्रयोग किया जाता है और मूल विषय की सभी महत्वपूर्ण बातों को एक-तृतीयांश में समाहित किया जाता है।

समय एवं श्रम के बचाव हेतु जीवन के विविध क्षेत्रों में उसकी आवश्यकता है। संक्षेपण लिखने में अपनी धारणा-शक्ति को सचेत करके आवश्यक और अनावश्यक सामग्री में फर्क समझने की जरूरत है। इससे हम अनावश्यक तथ्य, विस्तार, व्याख्या, विश्लेषण, उदाहरण आदि से बचते हैं। ध्यान रहे कि कोई आवश्यक बात छूटने न पाये। चाहे साहित्य के क्षेत्र में हो या लम्बे-चौड़े भाषण में अथवा कार्यालयों के आलेखन, पत्राचार आदि में, सर्वत्र संक्षेपण की बड़ी उपयोगिता है।

संक्षेपण के साधारण नियम

संक्षेपण करते समय विषय की मुख्य-मुख्य बातों की ओर संक्षेपक

को ध्यान देना चाहिए। संक्षेपक को अपने गुण-दोष की जानकारी होनी चाहिए ताकि गुणों का अनुसरण करें और दोषों से बचें।

संक्षेपक के गुण

(क) संक्षिप्तता संक्षेपण का प्रधान गुण है। यद्यपि इसके लिए कोई निर्दिष्ट सीमारेखा आँकी नहीं गई है, प्राय: एक तिहाई में इसे सीमित रखा जाता है। फिर भी इसमें ५-१० शब्द कम हों या बढ़ जायँ तो कोई विशेष हानि नहीं है। अनावश्यक व्याख्या, विस्तार, वर्णन आदि हटाते हुए मूल भाव या आवश्यक तथ्य पर ध्यान देना जरूरी है।

(ख) स्पष्टता इसलिए महत्वपूर्ण है कि संक्षेपण में अर्थ व्यंजना स्पष्ट होनी चाहिए। चूँकि पाठक के सामने मूल सन्दर्भ नहीं होगा, संक्षेपक को देखना चाहिए कि संक्षेपण में मूल विषय स्पष्ट हो जाय।

(ग) संक्षेपण में मूल विषय की पूर्णता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। संक्षेपक को अपनी ओर से जोड़ने या घटाने का अधिकार नहीं है। अत: पूर्णता के साथ मूल विषय का वह ऐसा संक्षिप्तीकरण करे ताकि मूल विषय का कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटने न पाए।

(घ) संक्षेपण की भाषा सरल और साफ है। बातें अभिधा में हों, लक्षणा और व्यंजना में नहीं। आड़म्बरहीन, सीधी,स्पष्ट और सरल भाषा ही पाठकों के हृदय तक बड़ी आसानी से पहुँच सकती है।

(ङ) भाव और भाषा की शुद्धता ही सफल संक्षेपण का आधार होती है। मूल भाव या तथ्य को बिना कुछ मिलावट के शुद्ध व स्पष्ट रूप से संक्षेपण करने की आवश्यकता है। अपनी ओर से कोई उद्धरण, टीका-टिप्पणी आदि नहीं होनी चाहिए।

(च) संक्षेपण में भाव और भाषा का प्रवाह एक आवश्यक गुण है। भाव क्रमबद्ध हो और भाषा प्रवाहपूर्ण हो। भाव सुसम्बद्ध और सुगठित हो तो संक्षेपण अच्छा होगा। भाव में बिखराव या विखण्डन हो तो अस्पष्टता और दुर्बोध्यता आ जाएगी।

(छ) सार लेखन या संक्षेपण के लिए तथ्यों को परखने तथा उसका सही विवेचन करने के लिए सजगता और सावधानी आवश्यक है।

(ज) विषय के सही विवेचन के लिए मानसिक एकाग्रता जरूरी है। इससे जटिल से जटिल विषय को समझने में मदद मिलती है।

(झ) ज्ञान की व्यापकता एवं विविधता संक्षेपक के लिए बहुत ही सहायक होती है। समकालीन समस्याएँ, साहित्यिक गतिविधियाँ, आसपास की घटनाओं आदि का ज्ञान पर्याप्त न हो तो विषय को समझने, उसकी तह तक पहुँचने में कठिनाई होगी।

(ञ) भाषा पर अधिकार होना और संक्षेपण कार्य का सतत अभ्यास संक्षेपक के लिए बड़ा मददगार होता है।

संक्षेपक के दोष

(i) संक्षेपण में प्रथम पुरुष तथा मध्यम पुरुष का कथन निषेध है। जब प्रथम पुरुष बदले, तब क्रिया पदों का रूप भी आवश्यकतानुसार बदल देना होगा।

(ii) प्रत्यक्ष कथन नहीं होना चाहिए। प्रश्न उत्तर में प्रश्न की चर्चा नहीं करनी है।

(iii) अधिक विस्तार से बचना चाहिए और इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रवाह विच्छिन्न न होने पाए, वाक्य परस्पर संबद्ध हों।

(iv) संक्षेपण को अलग-अलग भागों में न बाँटा जाए।

(v) अपनी ओर से जोड़ना या घटाना भी दोष है। आप चाहे मूल विषय के प्रति सहमत हों न हों, उस पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार आपको नहीं है।

(vi) कठिन तथा जटिल शब्दावली का प्रयोग करना भी दोष है।

(vii) मूल अवतरण में प्रयुक्त वाक्य, मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से बचना चाहिए।

(viii) पुनरावृत्ति भी एक दोष है। जहाँ कई प्रश्न और उनके उत्तर हों, वहाँ एक साथ क्रम से लिखकर उत्तर देना चाहिए।

(ix) अपनी ओर से व्यक्तिगत विचार उसमें न रखें।

(x) भाषा बोझिल न हो तथा व्याकरणगत त्रुटियों से बचें

(xi) संक्षेपण की शैली अलंकृत नहीं, सरल हो।

संक्षेपण की प्रविधि/प्रक्रिया:

(१) मूल विषय को दो-तीन बार ध्यान से पढ़ें जिससे भावार्थ स्पष्ट हो जाय। किस के बारे में कहा जा रहा है और क्या कहा जा रहा है, उसका पता लग जाने पर मुख्य अंशों को, महत्वपूर्ण तथ्यों को रेखांकित कर लीजिए।

(२) रेखांकित अंशों को पुन: क्रम से सजा लेना चाहिए।

(३) संक्षेपण करते समय ध्यान रहे कि एक-तिहाई के अन्दर अपना संक्षेपण सीमित रहे।

(४) अपनी ओर से कुछ जोड़े या घटाये बिना मूल विषय के प्रति विश्वस्त रहकर संक्षेपण करें।

(५) अनावश्यक विस्तार, उद्धरण आदि से बचें। लेकिन ध्यान रहे कि कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटने न पाए।

(६) अन्तिम रूप देने के बाद फिर से एक बार पढ़कर उसे जाँच लें कि एक-तिहाई से बहुत अधिक तो नहीं हो गया है! मूल विषय की शब्द संख्या के साथ संक्षेपण करने के बाद की शब्द-संख्या भी अवश्य लिखें।

(७) विषय के अनुरूप कोई उपयुक्त शीर्षक दें। प्रस्तुत अनुच्छेद तक ही शीर्षक को सीमित रखें। शीर्षक लघु और कम शब्दों वाला हो।

उदाहरण-१

१. निम्नलिखित अनुच्छेद का संक्षेपण कीजिए।

प्राचीन काल से ही दुनिया के हर हिस्से के चिन्तकों ने सादा जीवन और उच्च विचार की महत्ता पर बल दिया। उनका यह परामर्श इस बात पर आधारित है कि मानव की माँग असीमित है और यदि उनकी पूर्त्ति करके लगातार उन्हें उत्तेजित किया जाएगा तो इनका कभी अन्त नहीं होगा। एक माँग की पूर्त्ति होने पर दूसरी माँग पैदा होती रहेगी। ये मनुष्य को भौतिक उपलब्धियों का स्वार्थी दास बना देगी। इनसे मनुष्य का ध्यान उच्च चिन्तन से हटकर भौतिक प्राप्तियों के संकीर्ण चक्कर में उलझता रहेगा। इससे जीवन के उन उच्च आदर्शों की प्राप्ति, उसकी निष्ठा और एकाग्रता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, जिनमें से मुख्य है मानव मात्र की सेवा करना।

इस परमाणु युग में, सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शों के बीच का सामंजस्य बिगड़ गया है। बहुत से विचारक यह समझते हैं कि मानवता

की सेवा के लिए सादा जीवन के बजाय अच्छा रहन-सहन होना अधिक सहायक होगा।

लेकिन व्यावहारिक जीवन में इस विचार की पुष्टि नहीं होती। सभी लोग यह जानते हैं कि महात्मा गाँधी हमेशा धोती ही पहनते थे, फिर भी उन्होंने अपने गतिशील विचारों से दुनिया भर को झकझोर दिया था। इसी प्रकार से जवाहरलाल नेहरू, आब्राहम लिंकन, आइंस्टैन और ब्रर्टरिंड रसेल ने यह सिद्ध कर दिया था कि सादा जीवन बिताते हुए समाज की सेवा करना तथा महानता प्राप्त करने का बेहतर साधन है। (शब्द-२३०)

उत्तर: शीर्षक: सादा जीवन उच्च विचार

प्राचीन काल से ही विचारकों ने सादा जीवन उच्च विचार पर बल दिया है। मानव की कामना अनन्त है, वासनाओं की पूर्त्ति से नहीं, बल्कि उनसे हटकर ही जीवन में उच्चतम आदर्शों की प्रतिष्ठा की जा सकेगी, जिनमें से मुख्य है मानव-सेवा। कई विद्वानों का कहना है कि मानव-सेवा के लिए सादा जीवन की जरुरत नहीं। लेकिन गाँधी, नेहरू, लिंकन जैसे विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि समाज की सेवा करने के लिए सादा जीवन का महत्व सर्वोपरि है।

उदाहरण-२

अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है- कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूप में, कहीं रूखे, बैडौल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूपों में और कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके उन सब रूपों में लीन होता है क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख भोग नहीं, बल्कि चिर साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है।

जो केवल प्रफुल्ल प्रसून प्रसाद के सौरभ-संचार, मकरन्द लोलुप मधुकर के गुंजार, कोकिल कूजित निकुंज और शीतल सुखस्पर्श समीर की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोगलिप्सु हैं। इसी प्रकार जो केवल मुक्ताभासहिम-विन्दुमण्डित मरकताभ शाद्वलजाल, अनन्त विशाल गिरिशिखर से गिरते जलप्रपात की गम्भीर गति से उठी हुई सीकर नीहारिका के बीच विविध वर्ण स्फुरण की विशालता, भव्यता और विचित्रता में ही अपने हृदय केलिए कुछ पाते हैं वे तमाशबीन हैं, सच्चे भावुक या सहृदय नहीं। प्रकृति के साधारण, असाधारण सब प्रकार के रूपों को रखनेवाले वर्णन हमें वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति इत्यादि संस्कृत के प्राचीन कवियों में मिलते हैं। पिछले खेवे के कवियों ने मुक्तक रचना में तो अधिकतर प्राकृतिक वस्तुओं का अलग अलग उल्लेख केवल उद्दीपन की दृष्टि से किया है। प्रबन्ध रचना में थोड़ा-बहुत संश्लिष्ट चित्रण किया है, वह प्रकृति की विशेष रूप-विभूति को लेकर ही। (शब्द-११३)

उत्तर:

शीर्षक: 'कवि और प्रकृति'

प्रकृति के दो रूप हैं-एक इन्दर, दूसरा बेडौल। सच्चे कवि का हृदय दोनों में रमता है। किन्तु जो प्रकृति के बाहरी सौन्दर्य का चयन अथवा उसकी रहस्यमयता का उदघाटन करता रह गया वह कवि नहीं है। प्रकृति के सच्चे रूपों का चित्रण संस्कृत के प्राचीन कवियों में मिलते हैं। प्रबन्ध-काव्यों में उसका संश्लिष्ट वर्णन हुआ है। (शब्द-५२)

अभ्यास-

निम्नलिखित अनुच्छेदों का संक्षेपण कीजिए।

(क) आधुनिक नारी सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पुरुषों की भाँति ही वह उच्च शिक्षा ग्रहण करती है, सभी प्रकार की ट्रेनिंग लेती है और घर की सीमाओं से बाहर निकलकर स्कूल, कालेज, कार्यालय, अस्पताल आदि में अपनी कार्य-क्षमतानुसार स्थान प्राप्त करती है। राजनीति, वैज्ञानिक संस्थान, पर्वतारोहण, क्रीड़ा-जगत, पुलिस, सेना आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ नारी का प्रवेश न होता हो। शिक्षा-प्राप्ति और नौकरी से और कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो, एक लाभ यह अवश्य हुआ है कि वह पुरुष की निरंकुशता से मुक्ति प्राप्त करने लगी है। आर्थिक स्वावलम्बन ने उसके आत्मविश्वाास में वृद्धि की है और वह किसी भी समस्या से जूझने को तत्पर है। जिन लोगों को स्त्री की कार्यदक्षता में अविश्वास था, वे भी अब उसकी योग्यता का कायल होने लगे हैं। यही कारण है कि नौकरी-पेशा पुरुषों और स्त्रियों के वेतनमानों में कहीं कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। बल्कि कुछ व्यवसायों में तो स्त्रियाँ जितनी कुशलता से कार्य कर सकती हैं उतनी कुशलता से पुरुष उस काम को नहीं कर पाते। जैसे, अस्पतालों में रोगियों की सेवा के लिए महिला नर्स, बाल-विद्यालयों में शिक्षिकाएँ, महिला-रोगों के इलाज के लिए नारी - रोग विशेषज्ञ के रूप में महिला डाक्टर आदि।

(ख) आज हमारे जमाने की सबसे बड़ी समस्या प्रदूषण है। मनुष्य की भौतिक सुख-सुविधाओं का जितना अधिक विकास होता जा रहा

है यह समस्या उतनी बढ़ती जा रही है। इसका मूल कारण मनुष्य की अपनी स्वार्थ-वृत्ति है। मनुष्य ने प्रकृति के कोमल और सन्तुलित रूप को बिगाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी और प्राकृतिक साधनों का असावधानी से, बिना सोचे-समझे अन्धाधुन्ध दुरूपयोग किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि वातावरण में निरन्तर प्रदूषण बढ़ता जा रहा है।

प्रदूषण के अनेक कारण हैं। पहला कारण यह है कि औद्योगिक विकास के साथ-साथ मशीनों की संख्या जितनी बढ़ती जा रही है, धरती के वायुमण्डल में विषैला धुआँ उतना अधिक होता जा रहा है। फेक्टरियों की चिमनियाँ जो धुआँ उगलती हैं, वह वायु में फैलकर उसे दूषित कर देता है। इसी प्रकार तेल और पेट्रोल को ईंधन के रूप में प्रयोग करनेवाले जितने भी उद्योग धंधे हैं वे स्वास्थ्य केलिए हानिकारक हैं। बसें, ट्रक, मोटरकारें, मोटर साइकिलें और स्कूटर आदि भी धुआँ छोड़ते हैं और वह वायु में मिलकर वातावरण को दूषित कर देता है।

विशेष: इस प्रकार के भाव और विचारपूर्ण गद्यांश चुनें और उनके संक्षेपण करने का अभ्यास करें।

निबन्ध लेखन

निबन्ध : स्वरूप और सिद्धान्त

काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं निबन्ध नामक पाँच सशक्त विधाओं में से अन्यतम विधा है निबन्ध। अन्य विधाओं से भिन्न निबन्ध में न कोई कथा रहती है न कोई चरित्र। इसमें कुछ उपयोगी बाते होती हैं जो कहनेवाले के अनुभव और चिंतन पर आधारित होती हैं। अर्थात् निबन्धकार के ज्ञान की विविधता, अनुभव की व्यापकता एवं अभिव्यक्ति की परिपक्वता से उत्कृष्ठ निबन्ध बनते हैं। निबन्ध का मानदण्ड प्रस्तुत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - 'यदि गद्य कवियों और लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।'

निबन्ध की परिभाषा :

निबन्ध सृजनात्मक साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है - बाँधना, संग्रह करना या रोकना। हिन्दी में जिस अर्थ में आज निबन्ध शब्द ग्रहण किया जाता है, वह अंग्रेजी के 'एसे' शब्द का पर्याय है जो प्रयोग की दृष्टि से उस गद्य रचना के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें उसका रचनाकार आत्मीयता या अनात्मीयता, वैयक्तिकता - निर्वेयक्तिकता के साथ किसी एक विषय या प्रसंग पर अपनी भाषा-शैली में भाव या विचार प्रकट करता है।

यों तो निबन्ध को विद्वानों ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है किन्तु इनमें डा. गोविन्द त्रिगुणायत की परिभाषा सर्वाधिक स्पष्ट है - 'निबन्ध वह एक छोटा-सा गद्य विधान है जिसमें निबन्धकार जीवन या जगत से सम्बन्धित किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रति उद्‌भूत अपनी

मानसिक और बौद्धिक प्रतिक्रियाओं को इस प्रकार निर्बाध व्यक्त करता है कि वह अधिक रोचक, संवेदनशील और चमत्कारपूर्ण हो।'

विशेषताएँ :

परिभाषाओं से निबन्ध की निम्नलिखित विशेषताएँ उभरकर आती हैं - (१) निबन्धकार का व्यक्तित्व (२) विषय-स्वातन्त्र्य और सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि (३) आकार की लघुता (४) विचारों की स्वतन्त्रता (५) निजी अनुभूति का प्रकाशन (६) भाव-प्रवणता एवं सजीव भाषा-शैली (७) सहज भावोत्पादकता।

निबन्ध एक ऐसी गद्य-रचना है जिसमें किसी खास विषय का सांगापांगो वर्णन अथवा प्रतिपादन होता है। वर्णन भी सीमित आकार के भीतर होता है और उसमें निबन्धकार अपने विचारों को बड़ी स्वच्छन्दता पूर्वक संगति के साथ देता है। डा. ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में, 'साहित्य की यदि कोई विधा विषयवस्तु अथवा पाठक से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है तो वह निबन्ध है। निबन्ध स्वानुभूति के प्रकाशन का सर्वोत्तम साधन है।' कुल मिलाकर निबन्ध एक सीमित गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी भाव या विचार अथवा अनुभूति को सरस एवं सजीव ढंग से अपनी वैयक्तिकता की छाप के साथ कलात्मक या लालित्यपूर्ण शैली में प्रस्तुत करता है जिससे कृतिकार और पाठक के बीच एक प्रकार की आत्मीयता स्थापित हो जाती है।

निबन्ध लेखन में लेखक की भावना, विचारधारा पूर्ण आजादी से विषय या समस्या पर स्वयं का प्रभाव छोड़ती है। किन्तु यदि अभिव्यक्ति क्रमबद्ध न हो तो पाठक उसके सबल तर्क का भी समर्थन नहीं कर सकेगा।

निबन्ध लेखन की प्रक्रिया :

निबन्ध लिखने से पूर्व विद्यार्थी निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दें-

१. सोच-विचार कर रूप-रेखा तैयार करें जो समस्त विषय को समेट लें और क्रमबद्धता लिए हो।

२. भाषा सरल तथा बोधगम्य रहे। सरस मुहावरेदार, ओजपूर्ण भाषा उत्तम मानी जाती है। मुहावरों का उपयोग तब ही करें जब आपको उसका सही अर्थ ज्ञात हो।

३. छोटे-छोटे वाक्य बनाएँ। एक अनुच्छेद में एक ही विचार रखें।

४. विदेशी भाषाओं के उद्धरण देने हों तो उनका अनुवाद करके हिन्दी में दीजिए। यदि मूल भाषा का उद्धरण देना ही चाहें तो 'फुटनोट' के रूप में दे दें।

५. आपके विचार स्पष्ट, निर्भीक तथा पक्षपात रहित होने चाहिए।

६. वाणिज्यिक निबन्धों में, जहाँ तक हो सके नवीनतम सूचनाएँ तथा आँकड़े दें।

७. निबन्ध समाप्त करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि निबन्ध अधूरा न लगे। इसके बावजूद रूप-रेखा से अधिक बँधना ठीक नहीं है।

८. निबन्ध पूर्ण हो जाने पर उसे एकबार पढ़कर देख लें, कोई शब्द बदलना या हटाना हो तो शुद्ध कर लें। कोई महत्वपूर्ण बात याद आ जाय तो उसे भी यथास्थान लिखें।

९. किसी विचार या तर्क को अधिक महत्व देकर उसकी पुनरावृत्ति न करें।

१०. किसी प्रकार व्याकरणगत और भाषागत तृटियाँ न हों, विद्यार्थी को इसका सतत ध्यान रखना चाहिए।

११. निबन्ध लेखन एक साधना है - इसे सतत पढ़ने एवं लिखने का अभ्यास बनाए रखें तो इस में दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

निबन्ध के अंग :

मोटे रूप में निबन्ध के तीन अंग होते हैं - प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त। प्रारम्भ में लेखक अपने मन्तव्य के अनुकूल पाठक की मानसिकता तैयार करने का प्रयास करता है, विषय की भूमिका बाँधता है। निबन्ध का प्रारम्भ हमेशा प्रभावी, विषय के अनुकूल एवं पाठक की रुचि जाग्रत करने में सफल होना चाहिए। मध्य भाग विवेचन या विवरण खण्ड होता है। विषय के प्रति ज्ञान, अनुभव और लेखक की प्रतिभा को यह अंश उजागर करता है। इसे निबन्ध का सारगर्भक अंश भी माना जाता है। विषय की व्यापकता के अनुसार इसमें अलग अलग अनुच्छेद बनाए जा सकते हैं।

अन्त में विषय की संक्षिप्त विवेचना और मध्य में प्रस्तुत तर्कों को स्वीकार करने के लिए पाठक की मन:स्थिति तैयार की जाती है। इसमें निष्कर्ष रूप में समूचे विषय को समाकलित कर लेखक एक प्रकार से अपना निर्णय सुनाता है।

निबन्ध के प्रकार :

निबन्ध के विषयों की कोई सीमा नहीं है। संसार के किसी भी विषय, समस्या या चिन्तन को लेकर निबन्ध लिखे जा सकते हैं। अत: विषय की दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैज्ञानिक, शैक्षिक, खेल सम्बन्धी तथा किसी सामाजिक समस्या को लेकर निबन्ध लिखे जा सकते हैं। जहाँ वैयक्तिक अनुभव को अधिक महत्व दिया जाय, उसे व्यक्तिपरक एवं जहाँ वस्तु या घटना को प्राथमिकता दी जाय, उसे वस्तुपरक निबन्ध कहा जाता है। शैली की दृष्टि से भी निबन्धों का विभाजन किया जा सकता है। जैसे, भावात्मक, विचारात्मक, ललित, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक, मनस्तात्विक, चिन्तनपरक आदि।

विद्यार्थियों के लिए नमूने के रूप में कतिपय निबन्ध प्रस्तुत किये जा रहे हैं। साथ ही साथ मे दिए-गए शीर्षकों पर इसी नमूने के आधार पर विद्यार्थी निबन्ध लेखन का अभ्यास कर सकते हैं। इसमें भाषा में निखार आने के साथ विद्यार्थी में विषय की विविधता का भी ज्ञान होगा। परिणामत: आस्था में वृद्धि होगी और विद्यार्थी व्यक्तित्व पर अच्छा असर पड़ेगा।

उदाहरण- १

प्रदूषण की समस्या

प्रदूषण का अर्थ है वातावरण या वायुमण्डल का अस्वस्थ होना। अत: इस समस्या से आज सारा विश्व चिन्तित है। प्रकृति और उसका वातावरण, अपने स्वभाव से शुद्ध, निर्मल और स्वास्थ्यप्रद हुआ करता है। यदि वह किन्हीं कारणों से दूषित हो जाता है तो मानवता के स्वस्थ

विकास के लिए अनेक प्रकार के खतरे उत्पन्न हो जाया करते हैं। दूषित वातरवरण अनेक प्रकार के ज्ञात-अज्ञात रोग उत्पन्न करके मानव तो क्या सभी प्रकार के जीवधारियों की साँसों में अदृश्य विष घोल दिया करता है। परिणामस्वरूप संक्रामक बीमारियों से पीड़ित मानवता और अन्य जीवधारी बड़ी तेजी से मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगते हैं। यही सब देख-सुन आज की समूची मानवता, विशेषकर विज्ञान-जगत प्रदूषण की इस समस्या को लेकर अत्यधिक चिन्तित हो उठा है।

सभी मानते हैं कि प्रदूषण की समस्या मूल रूप से आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा अन्धा- मशीनीकरण और औद्योगीकरण की देन है। आज के मशीनी उद्योगों से जो कचरा या फालतू माल बचता है, उसे या तो जलाया जाता है या फिर भराव के काम में लाया जाता है। ऐसा करने से पहले कई बार इन सबके ढेर भी लगा दिये जाते हैं। इन्हीं से उत्पन्न कीटाणु, दुर्गन्ध और अन्य प्रकार के तत्त्व वायुमण्डल में घुल-मिलकर उसे मारक स्थिति तक दूषित बना देते हैं। कई बार कल-कारखाने से बहने वाला पानी नदियों-नालों में बहकर आता है। उस पानी में अनेक प्रकार के दूषित और हानिकारक रसायन घुले-मिले रहते हैं। उनके प्रभाव से दूषित होकर पानी वातावरण को तो दूषित बनाता ही है, उस धरती की मिट्टी को भी विषैला कर देता है, जिसे उस पानी से सींचा जाता है। वहाँ उत्पन्न फल-सब्जियाँ आदि खाना खतरनाक हो सकता है। महानगरों के आस-पास इस कार्य के लिए ऐसे पानी का आम प्रयोग किया जाता है। जलचर जीव भी उस पानी के प्रभाव से तड़पकर मरने लगते हैं। यदि वह पानी आदमी पी ले, तो उसकी क्या दशा होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। भारत की गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियाँ भी आज

प्रदूषण के मारक प्रभाव से बच नहीं सकीं। उनके शुद्धीकरण के प्रयास चले रहे हैं।

इनके अतिरिक्त प्रदूषण के अन्य अनेक कारण भी विद्यमान हैं। बड़े-बड़े कल-कारखानों की चिमनियों से अनवरत उठने वाला धुआँ, रेल तथा अन्य प्रकार के मोटर वाहनों के पाइपों से, इंजिनों से निकलने वाली गैसें और धुएँ, घरों में जलाया जाने वाला कोयला, भट्टियों में जलने वाला हार्ड कोक, स्टोव में जलता केरोसिन आदि - इन सबसे कार्बन-डाइ-आक्साइड, नाइट्रोजन, सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक अक्साइड आदि निकल-निकलकर हर क्षण वायुमण्डल में घुलते रहते हैं। परिणामस्वरूप वातावरण का दूषित हो जाना स्वाभाविक ही है। इन सबका प्रभाव मानव और जीवधारियों पर तो पड़ता ही है, विशेष प्रकार के बने नये-पुराने भवन भी इनके प्रदूषित प्रभावों से आज विनाश के कगार तक पहुँच गये हैं। इस प्रकार प्रदूषण का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। चेतन प्राणियों, वनस्पतियों आदि को तो वह प्रदूषित कर ही रहा है, जड़ पदार्थ भी उसके विषैले प्रभाव से नहीं बच पा रहे। ताजमहल आदि भवनों को लेकर इस कारण सभी चिन्तित हैं।

वायुमण्डल के प्रदूषण से जो अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं, वैज्ञानिकों ने उनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं - अनेक प्रकार के चर्म तथा श्वास रोग - खाँसी, जुकाम, दमा, क्षय आदि, फेंफड़ों का कैंसर, श्वसनी-शोथ आदि। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य नये-नये रोगों के नाम भी सुनने में आ रहे हैं कि जिनका विश्लेषण और नामकरण अभी बाकी है। विश्व के महानगरों के समान भारत के भी मुम्बई, कोलकाता जैसे महानगर प्रदूषणजन्य इस प्रकार के रोगों से अधिक प्रभावित हैं। इन

शहरों में अक्सर व्यक्ति दम घुटने जैसी स्थिति का अनुभव करने लगता है। अन्य नगर, जहाँ निरन्तर औद्योगीकरण की प्रक्रिया चल रही है, वे भी बड़ी तेजी से प्रदूषण का शिकार होते जा रहे हैं। राजधानी दिल्ली की गिनती सर्वाधिक प्रदूषित नगरों में होने लगी है।

आज विश्व के कोने-कोने में जो अनेक प्रकार के परमाणु-विस्फोट और वैज्ञानिक परीक्षण हो रहे हैं, प्रदूषण का वे भी बहुत बड़ा कारण है। उनसे उठने वाली गैसें वहीं तक सीमित न रहकर देश-विदेश तक पहुँच वहाँ का वातावरण विषाक्त कर रही हैं। इन विस्फोटों ने ऋतुओं के चक्र, क्रम और समय तक को बदल डाला है। नगरों में धरती के अन्दर बने सीवर का जल भी अक्सर नदियों में गिराया जाता है, जिससे पानी दूषित, विषाक्त होकर ऑक्सीजन रहित हो जाता है। उस जल से सिंचित फसलें शहरों के आस-पास, उगने वाली सब्जियाँ और फल आदि दूषित, तत्त्वहीन हो जाते हैं, फिर भी हम लोग उन्हें खाने-पीने के लिए विवश हैं। ताप-बिजलीघरों और परमाणु-भट्टियों से निकलने वाली ऊष्मा भी जलवायु के सन्तुलन को बिगाड़कर अनुपयोगी बना दिया करती है। जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई से, अनेक प्रकार के ईंधन जलने से वायुमण्डल में कार्बन डाई-आक्साइड का प्रभाव अपने हानिकर रूप में निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह बढ़ाव यदि इसी प्रकार जारी रहा तो हिमखण्ड पिघलकर बाढ़ और प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देंगे। इन सबको देखकर विशेषज्ञों ने हिसाब लगाया है कि यदि इस बढ़ रहे प्रदूषण को रोकने का जबरदस्त और योजनाबद्ध प्रयास नहीं किया गया तो सौ-सवा सौ वर्षों के बाद इस धरती पर मानव-समेत सभी जीवधारियों का रह पाना असम्भव हो जायेगा। अत: अभी से सावधान होने की बहुत आवश्यकता है।

इन्हीं सब तथ्यों के आलोक में ५ जून, १९७७ को सारे विश्व में 'पर्यावरण-दिवस' मनाया गया था। निश्चय किया गया कि ऐसे साधन खोजे जायें, जिनसे प्रदूषण के कारण सम्भावित विनाश से मानवता को बचाया जा सके। यह सुझाव भी दिये गये कि बड़े-बड़े कल-कारखाने नगरों-बस्तियों से दूर खुले वातावरण में लगाये जायें। नगरों के आस-पास वन-उपवन उगाये जायें, कल-कारखानों के कचरे, प्रदूषित जल को ठिकाने लगाने के उपाय और साधन खोजे जायँ। ऐसा करने में ही वायुमण्डल और पानी की रक्षा प्रदूषण से हो सकती है। मानव का भविष्य स्वस्थ, निरोग और सुखी रह सकता है। अन्यथा विनाश अवश्यम्भावी है। नगरों, महानगरों में बढ़ती जन-संख्या, उसके कारण आवास-समस्या भी वातावरण को दमघोंटू बना रही है। इन सब बातों का निराकरण भी आवश्यक है।

उदाहरण-२

राष्ट्रभाषा की समस्या और हिन्दी

बिना अपनी भाषा के आज के मनुष्य की कल्पना असंभव है, उसी प्रकार बिना राष्ट्रभाषा के किसी राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। व्यक्ति स्वयं से बातें करता है, उसका मन अपनी इन्द्रियों से विचार-विनिमय करता है, उसकी इन्द्रियाँ आपस में भी इठलाती-बोलती हैं। यह व्यक्ति की अपनी मौन भाषा है उसे दूसरा व्यक्ति नहीं समझ पाता। परन्तु जब एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति से विचार-विनिमय करना चाहता है, तब उसे ध्वनि और विचारों से किसी सार्वजनीन भाषा का आधार लेना होता है। यह भाषा उसके विचारों के विनिमय का माध्यम होती है। बिना ऐसी

भाषा के एक व्यक्ति अपने आप में व्यक्ति तो रह सकता है पर वह समाज की इकाई नहीं बन सकता। यही बात राष्ट्र के लिए भी सत्य है। राष्ट्र का एक खंड या प्रदेश जहाँ अपनी भाषा में अपना माध्यम हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रदेशों को अपनी भाषा की आवश्यकता होती है राष्ट्रभाषा, राष्ट्र के सभी खंडों और प्रदेशों को मोतियों की तरह विचारों के एक सबल सूत्र में पिरोती है। इस सूत्र के अभाव में, या इसके टूटने पर माला बिखर सकती है और राष्ट्र का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है।

भारत के स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित होते ही राष्ट्रभाषा का प्रश्न शासन के सामने आया। भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं को राष्ट्रभाषा के लिए परखा जाने लगा परन्तु कुछ विचारों में बिके भारतीयों ने भारतीय भाषा को राष्ट्रभाषा का पद देने का विरोध आरम्भ किया। उनकी रगों में अंग्रेजों की दासता और संस्कृति के कण शेष थे, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के अभियान को बल दिया। तत्कालीन राष्ट्र-नायकों ने उनकी इस अराष्ट्रीयवादी भावनाओं को महत्व नहीं दिया और यह स्वीकार किया कि किसी राष्ट्रीय भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाना सुविधाजनक तथा युक्तिसंगत होगा। इस सिद्धान्त के स्वीकार होते ही सभी भारतीय भाषाओं की समर्थता वैज्ञानिक धरातल पर परखी जाने लगी। सन् १९५० में जब स्वाधीन भारत के संविधान की घोषणा हुई तो विद्वानों के विश्लेषण एवं परीक्षण के आधार पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। सन् १९६५ तक के लिए अंग्रेजी को बने रहने का प्रावधान किया गया ताकि इस बीच कर्मचारी हिन्दी को पूरी तरह अपना ले और हिन्दी की न्यूनता भी दूर की जा सके। इस अवधि के लिए हिन्दी को सह-भाषा का स्थान दिया गया।

संविधान में हिन्दी ने राष्ट्रभाषा का स्थान अपनी विशेषताओं के कारण ही पाया था। अपने देश में लगभग पचास प्रतिशत लोगों की मातृभाषा हिन्दी है तथा अस्सी प्रतिशत से अधिक देशवासी हिन्दी समझ लेते हैं। अपनी उत्पत्ति के आधार पर हिन्दी आर्यकुल की भाषा है अतएव दक्षिण भारत की चार मुख्य भाषाओं को छोड़कर शेष सभी भारतीय भाषाओं से इसका पारिवारिक संबंध है यह भाषा अपने आप में सरल और सीधी है जिसे अपनाना कठिन है। इसकी लिपि देवनागरी है, जिसे विद्वानों ने विश्व की सर्वोत्तम वैज्ञानिक लिपि माना है। भारत का प्राचीनतम साहित्य, संस्कृत-साहित्य भी इसी लिपि में है। संस्कृत से उद्‌भूत होने के कारण हिन्दी में राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक विचारों को वहन करने की क्षमता है। हिन्दी में प्रकाशित साहित्य ने हिन्दी की इस क्षमता के प्रमाण भी दिये। भारतीय विद्वानों द्वारा किए गये विश्लेषण ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद के लिए मनोनीत कर दिया।

संविधान में राष्ट्रभाषा का पद पाने के बाद भी, खेद है, आज तक हिन्दी की स्थिति को केन्द्र-शासन स्पष्ट नहीं कर पाया। अभी तक संसद में यह समस्या उपस्थित होती रहती है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा, राजभाषा या सम्पर्कभाषा, में से किस रूप में स्वीकार किया जाये। भाषा के इन तीनों रूपों में अधिकारों का ही अंतर है। राष्ट्रभाषा का क्षेत्र और अधिकार सर्वाधिक है। राजभाषा और सम्पर्कभाषा के क्षेत्र तथा अधिकारों के योग से राष्ट्रभाषा के क्षेत्र और अधिकार निर्धारित होते हैं। हिन्दी को अब राजभाषा या सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार करना हिन्दी के साथ अन्याय और संविधान के साथ धोखेबाजी करनी है। इस समस्या को उलझाने के लिए केन्द्र-शासन उत्तरदायी है। संविधान के अनुसार २६

जनवरी, १९६५ ई. को हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित हो जानी चाहिए थी - पर ऐसा नहीं हुआ। घोषणा की इस तिथि पर हिन्दी विरोधी जो नियोजित आन्दोलन हुए और उन्हें लेकर शासन ने जो रुख अपनाया वह शासन की दुर्बलता और दोहरी नीति का द्योतक है।

हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में अंग्रेज शासकों के साथ-साथ अंग्रेजी हटाओ का नारा भी गूँजता रहा है। देश के नेता यह जानते थे कि अंग्रेजी भाषा को हटाये बिना देशवासी मानसिक दासता से मुक्त नहीं हो सकेंगे। इसलिए स्वाधीनता की पूर्णता के लिए और देश की एकता के लिए उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प कर लिया था। उनका यह संकल्प, भारत के संविधान बनाने के वर्षों पूर्व, भारत की स्वाधीनता के भी पूर्व १९२० ई. में ही हमारे सामने आ गया था। १९२८ में हिन्दी के पक्ष में एक लेख में महात्मा गांधी ने कहा था- "मैं यदि तानाशाह होता तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा का दिया जाना बन्द कर देता।" ....महात्मा गांधी तो तानाशाह नहीं बन सके पर इधर हिन्दी के विरोध में हमें तानशाही के ही दर्शन हो रहे हैं। साहित्य सदा से राजनीति के द्वारा छला जाता है। और आज हिन्दी की स्थिति का कारण भी राजनीतिज्ञों का छल है। अपने पदों पर बने रहने के लिए अहिन्दी-भाषी जनता की भावनाओं की ओट में उन्होंने अपने सारे संकल्प तोड़ दिए और राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थिति की ओर अधिक अस्पष्ट कर दिया। १९६५ के बाद भी अंग्रेजी के महत्त्व को बनाये रखने के विधेयक का हिन्दी जगत् ने खुलकर एक स्वर में विरोध किया पर शासन ने उस पर ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप दो प्रतिशत भारतीयों द्वारा समझी जाने वाली विदेशी भाषा अंग्रेजी और कुछ वर्षों के लिए कुटिलतापूर्वक ९८ प्रतिशत भारतीयों पर लाद दी गई।

हिन्दी की इस उपेक्षा और दुर्दशा के कई कारण हैं। कुछ लोगें के विचार में हिन्दी उनकी दृष्टि में अधिक महत्तवपूर्ण भाषा नहीं थी। उधर केन्द्र और राज्य-स्तर पर शासन की बागडोर सँभालने वाले अधिकारी अंग्रेजी सभ्यता की जूठन में ही स्वाद लेते थे। कार्यालयों में हिन्दी न आ जाये इसके लिए इन अधिकारियों ने क्या नहीं किया, और जिन राजनीतिज्ञों पर वे छाये थे उनसे भी हिन्दी का विरोध कराया। उनके इस विरोध का साथ उन शिक्षा-शास्त्रियों ने भी दिया जो उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में अपना साम्राज्य स्थापित किए अंग्रेजों की विदाई पर आठ-आठ आँसू रो रहे थे। शिक्षा एवं प्रशासन के क्षेत्र में हिन्दी को अयोग्य असमर्थ सिद्ध करने के लिए सामूहिक प्रयास हुए। अनोखे तर्क दिए गये और हिन्दी की सारी समर्थता स्वार्थ से ढाँप दी गई। शासन ने अपनी नैतिकता का ढोल पीटने के लिए हिन्दी आयोग की स्थापना की, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय बनाया पर वहाँ का सारा कार्यक्षेत्र टेबुलों तक ही सीमित रहा। भाषा की उन फैक्ट्रियों से जो कुछ निकला वह भी साहित्य को दुरूह और भाषा को बोझिल बना गया।

भाषावार राज्य रचना ने भी हिन्दी का अहित किया। इन नये प्रान्तों ने देश को हर दृष्टि से बाँट दिया और राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रभाषा के प्रश्नों ने बड़ा विकराल रूप धारण कर लिया। प्रदेशों की राजनीतिक एकता की समस्या उपेक्षित ही रही। हिन्दी के कुछ अंधभक्तों एवं उथले साहत्यिकारों ने भी हिन्दी को आघात पहुँचाया । समय की आवश्यकताओं को बिना समझे-बूझे, उन्होंने संविधान की आड़ में हिन्दी को अहिन्दी-भाषियों पर लादने का घृणित अभियान प्रारम्भ किया। इस अभियान की प्रतिक्रिया बुरी हुई। अहिन्दी भाषियों ने हिन्दी के विरोध की गति तीव्र कर दी। अच्छे साहित्य की रचना में असमर्थ इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य

को दूसरों पर थोपने की जो चेष्टा की उससे हिन्दी का पक्ष और दुर्बल हुआ। यदि ये साहित्यकार पुष्ट साहित्य रचते, राजनैतिक, शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक विषयों पर उपयोगी साहित्य के निर्माण का प्रयास करते तो उससे हिन्दी को बल मिलता। साहित्यकार यदि हिन्दी का भण्डार संस्कृत साहित्य के भण्डार की भाँति समृद्ध, समर्थ और सशक्त करते तो हिन्दी-विरोधी स्वयं ही हिन्दी के भक्त बन जाते।

हिन्दी के लिए संघर्ष के इन क्षणों में भी अधिकतर हिन्दी-भाषियों का रुख ऋणात्मक रहा। दूसरे प्रदेशों की भाषाओं का वे सदा से तिरस्कार करते आये हैं। बिना दूसरी भाषाओं को पढ़े, समझे, उनके साहित्यों को हीन कहना, उनका उपहास करना अनेक हिन्दी-भाषियों के लिए साधारण बात रही है। यदि हम पड़ोसी की भाषा को हीन कहें, या उसका उपहास करें और उससे अपनी भाषा की प्रशस्ति की अपेक्षा करें तो यह हमारी मूर्खता है। भाषा-प्रेम भी पारस्परिक होता है। यदि हिन्दी-भाषियों ने हृदय से अन्य भारतीय भाषाओं का स्वागत किया होता तो यह विरोध अपने आप शिथिल हो जाता। हिन्दी के विद्वानों, साहित्य समितियों और साहित्य सम्मेलनों ने भी अपनी अधिक शक्ति हिन्दी आंदोलन में लगाई, हिन्दी के व्यावहारिक पक्ष की ओर उन्होंने भी विशेष ध्यान नहीं दिया। हिन्दी व्याकरण की दुरूहता तथा शब्दों की वर्तनी की समस्या अहिन्दी-भाषियों के लिए किस प्रकार सुलझ सकती है इस पर ठोस कार्य नहीं हुआ। हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में व्याकरण तथा वर्तनी के अनेक रूप इसी निष्क्रियता के प्रमाण हैं। यही नहीं, हिन्दी के तो ऐसे भक्त भी हैं जो अंग्रेजी के माध्यम से अपने परिवार को शिक्षा दिलाते हैं और संबंधियों से अंग्रेजी में ही पत्र-व्यवहार करते हैं। इन भक्तों से हिन्दी का मंदिर कितना सुदृढ़ होगा।

अहिन्दी-भाषियों द्वारा हिन्दी का विरोध तो समझा जा सकता है पर हिन्दी के विरोध के साथ अंग्रेजी का समर्थन हमें उलझन में डाल देता है। तामिलनाडु में हिन्दी-विरोध तामिल-समर्थन से जोड़ा जाता तो एक बात थी, पर बात तो अंग्रेजी के समर्थन पर अटकती है। इन तथ्यों का विश्लेषण एक महत्त्वपूर्ण रहस्य का उद्‌घाटन करता है। हिन्दी के इस सारे विरोध के मूल में राजनैतिक स्वार्थ ही सक्रिय है। प्रजातंत्र में विरोध अनिवार्य होता है, ठीक है, परन्तु जब प्रजातंत्र की जड़ें हिलने लगती हैं। देश की राजनीति में विरोधी दलों ने शासन का विरोध करने के लिए जो सामग्री एकत्रित की उसमें राष्ट्रभाषा को भी जोड़ लिया गया। राष्ट्र के हित-अहित की बात उन्हें नहीं सूझी। अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने हिन्दी-विरोधी आंदोलन को प्रश्रय दिया। अहिन्दी-भाषियों को यह समझाया गया कि हिन्दी से उनकी मातृभाषा के अस्तित्व को खतरा है हिन्दी के द्वारा उन पर उत्तर भारतीय संस्कृति लादी जा रही है। उन स्वार्थी नेताओं का यह जहर जनता में बुरी तरह फैल गया और हिन्दी के विरोध में उग्र रूप धारण कर लिया। संघर्षों का आधार सदा से विचार रहा है, पर यहाँ तो संघर्षों का आधार भाषा बन गई, जो विचारों के विनिमय का माध्यम मात्र है। आश्चर्य की बात तो यह है कि चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे वरिष्ठ विचारक भी माध्यम के इस संघर्ष में सेनानायक बने। १९३७ में जब मद्रास में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमंडल बना था, तो मुख्य मंत्री राजगोपालाचारी ने ही सारे प्रदेश में हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य कराया था और अब वे हिन्दी-विरोधी अभियान के नायक हैं। एक विचारक की राजनीति से पराजय का यह एक अद्वितीय उदाहरण है।

प्रादेशिक भाषाओं और राष्ट्रभाषा में न विरोध हो सकता है और न स्पर्धा। एक प्रदेश का प्राण है तो दूसरी राष्ट्र की चेतना। दोनों परस्पर के

पूरक हैं। हमारे संविधान ने कहीं भी प्रादेशिक भाषाओं की उपेक्षा की बात नहीं कही है। पर हिन्दी को उसका वास्तविक सम्मान दिलाने के लिए हिन्दी वालों को अधिक प्रयास करने होंगे। केवल संविधान की बैसाखी की सहायता से हम अपनी पंगु मान्यताओं को नहीं खींच सकेंगे। हमें हिन्दी भाषा और साहित्य को अधिक समृद्ध और सशक्त करना होगा। ज्ञान की हर विधा में उच्च साहित्य का निर्माण हिन्दी में हो, इसके लिए हमें संगठित होना पड़ेगा। हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का परस्पर अनुवाद हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा। हिन्दी के प्रदेशों में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के अध्ययन-मनन का प्रबन्ध करना होगा तथा हिन्दी से अन्य भारतीय भाषाओं के समन्वय के साधन भी हमें जुटाने होंगे। विचारों का विनिमय होने पर विचार-साम्य होगा और माध्यम का यह संघर्ष समाप्त होकर रहेगा। इस संघर्ष के समाप्त होते ही शासन को जनता की रुचि का सम्मान करना होगा तथा हिन्दी अपने अर्जित राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होकर रहेगी।

उदाहरण- ३

विद्यार्थियों में अनुशासन की समस्या

मानवता और पशुता के बीच की सीमारेखा ज्ञान है। ज्ञान के कारण मनुष्य पशुता से मुक्त होता है। आज ज्ञान अर्जित करने का साधन विद्याध्ययन है। जो विद्याध्ययन करते हैं अथवा जो विद्या के अभिलाषी हैं उन्हें हम विद्यार्थी कहते हैं। मानव जीवन में विद्यार्थी जीवन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है इसी समय मनुष्य के जीवन की नींव पड़ती है। उसका सारा भविष्य उसके विद्यार्थी जीवन पर निर्भर रहता है। एक शिक्षाशास्त्री का

कहना है कि जिस प्रकार पौधे सिंचाई से विकसित होते हैं उसी प्रकार मनुष्य शिक्षा द्वारा विकसित होता है। अतएव मनुष्य को अपने विकास के लिए अपने विद्यार्थी जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।

जहाँ तक आज के विद्यार्थी वर्ग का प्रश्न है, वह देश का भावी कर्णधार है। विद्यार्थी वर्ग ही आज देश की परिस्थितियों का भली-भाँति अध्ययन कर देश के भविष्य को सँवार सकता है। यदि हम इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें पता चलेगा कि विद्यार्थियों ने अनेकों बार समाज-व्यवस्था को परिवर्तित करने तथा मानवता को प्रतिष्ठित करने में अपना सहयोग दिया है। भारतीय स्वाधीनता का इतिहास भारत के विद्यार्थियों की सजगता का सबसे बड़ा प्रमाण है । विद्यार्थी हमारे नेताओं की शक्ति थे और विद्यार्थी ही उनकी तरुण भावनाओं के प्रतीक थे। इन्हीं कारणों से राष्ट्र की समस्त आशाएँ आज भी विद्यार्थी पर ही टिकी हैं।

सामाजिक जीवन की सफलता का बहुत कुछ रहस्य अनुशासन में निहित है। अनुशासन का अभाव समाज में अराजकता फैला सकता है। इस अनुशासन का अर्थ, आदेशों का अनुसरण करना है। कार्य संचालन के लिए, व्यवस्था के लिए, दैनिक जीवन के लिए जो आदेश हो, जो नियम बने हों उनका सम्मान करना ही अनुशासित होना है। विद्यार्थी-वर्ग के संदर्भ में जब हम अनुशासन की बात करते हैं तो हम उसे दो अर्थों में लेते हैं। एक अर्थ में अनुशासन से हमारा तात्पर्य विद्यार्थी से शाला, विद्यालय, महाविद्यालय आदि के नियमों का पालन कराना है जिसके अन्तर्गत भय, अंकुश सभी कुछ आ जाता है। वह अनुशासन बाह्य अनुशासन है। दूसरे अर्थ में अनुशासन से हमारा तात्पर्य विद्यार्थी की गतिविधियों का मूल तो अन्त: में ही होता है। यदि विद्यार्थी अनुशासन-

प्रिय हो जाता है तो आज के समाज की अनेक समस्याएँ हल हो जायेंगी। परन्तु यह कल्पना कठिन है। सामाजिक अनुशासन की दुर्बलताएँ ही अपने विविध रूपों में अनुशासन-हीनता फैलाती हैं और विद्यार्थी-वर्ग भी उनकी चपेट में आ जाता है। विद्यार्थियों में अनुशासन-हीनता समाज से आती है और यही अनुशासन-हीनता विद्यार्थीवर्ग से परिवर्तित होकर पुन: समाज में लौटती है और विकराल रूप धारण कर लेती है।

आज विद्यार्थियों को लेकर अनुशासन-हीनता की चर्चा सर्वाधिक होती है। विद्यार्थियों की अनुशासन-हीनता आज के विषाक्त सामाजिक जीवन का प्रमाण है। समाज से दया, करुणा, स्नेह, सहानुभूति और बन्धुत्व के भाव उठ गये हैं और उनके स्थान पर प्रतिहिंसा, प्रतिकार, प्रतिशोध, ईर्ष्या और द्वेष के भाव बस गये हैं। इनका प्रभाव शिक्षा जगत् पर भी पड़ा है। विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता तो आज चरम सीमा पर है जिससे राष्ट्रीय जीवन तक विषम हो गया है। सभी विचारकों को आज इस समस्या ने आकर्षित किया है। अनुशासनहीनता के कारणों पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। शिक्षा जगत् में फैली अनुशासन-हीनता दो प्रकार की है - एक व्यक्तिगत, दूसरी सामूहिक। अब हम इनके कारणों पर विचार करेंगे।

बालक की शिक्षा परिवार से ही प्रारंभ होती है, अतएव-अनुशासनहीनता का प्रथम कारण परिवार ही है। घर का विषम जीवन, पारिवारिक कलह, पारस्परिक क्रूरता तथा आर्थिक समस्याओं का बालक पर प्रभाव पड़ता है। परिवारगत रूढ़िवादिता और अर्थहीन परम्पराएँ भी बालक के मन में विद्रोह तथा अनुशासन के प्रति घृणा उत्पन्न करती हैं। घर से बाहर आते ही समाज का विष बालक को और घेरता है। समाज

में व्याप्त अनैतिकता, धूर्तता और भौतिक स्पर्धा से उसकी अनुशासन-हीनता को प्रोत्साहन मिलता है। राजनैतिक पाबंदियाँ भी उसे परिवार और विद्यालय के प्रति विद्रोह के पाठ ही पढ़ाती हैं। विद्यार्थी राजनैतिक दलों की स्वार्थ-सिद्धि का माध्यम बना लिया जाता है और हर विद्यार्थी के साथ राजनैतिक विचारधारा विद्यालयों, महाविद्यालयों में पहुँचती है। राजनीतिज्ञों के संकेत पर विद्यार्थी अनुशासन भंग करते हैं और आपस में लड़ते हैं। विद्यालयों और महाविद्यालयों में जब विद्यार्थी संगठनों अथवा संघों के चुनाव होते हैं तब राजनैतिक दलबंदी का भयानक रूप हमें विद्यार्थियों के बीच देखने को मिल जाता है। इन दलबंदियों के कारण शिक्षा-संस्था वर्गों में बंट जाती है, विद्यार्थियों के मन बंट जाते हैं और अनुशासन की रज्जु ढीली हो जाती है।

विद्यार्थियों का लक्ष्य है विद्याध्ययन। यदि विद्यालयों का ही वातावरण दूषित होगा तो विद्यार्थियों का मानसिक संतुलन और बिगड़ेगा। विद्यालयों की दुर्व्यवस्था, शिक्षकों की अनुशासन-हीनता तथा अपने कार्य की उपेक्षा का विद्यार्थियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शिक्षकों से तो उनका सीधा संबंध होता है। यदि शिक्षक कार्य की ओर से उदासीन, निम्नकोटि की गतिविधियों में संलग्न तथा चरित्रहीन हैं तो विद्यार्थी भ्रष्ट, उच्छृंखल और शिक्षा की ओर से उदासीन हो जाता है।

हमारी शिक्षा-प्रणाली भी अनुशासन-हीनता को बढ़ावा देती है। अनुपयोगी विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों में असंतोष भरती है। आज भी हम अंग्रेजों की बनाई परिपाटी पर चल रहे हैं और स्वयं को मिटा रहे हैं। परीक्षा-विधि भी इस अनुशासन-हीनता में सक्रिय भाग लेती है। विद्यार्थी वर्ष भर समय नष्ट करने के बाद भी अंतिम दो माह के अध्ययन से परीक्षा

में उत्तीर्ण हो जाता है। वर्ष भर वह उत्पात करता है फिर अंतिम दो माहों में अत्यधिक परिश्रम कर स्वास्थ्य बिगाड़ता है। दोनों ही स्थितियाँ हानिप्रद हैं। इन छात्रों की बढ़ती संख्या ने अनुशासन को और जटिल कर दिया है। कक्षाओं में इतने अधिकतर विद्यार्थी एक साथ अध्ययन करते हैं कि शिक्षक न उनकी ओर विशेष ध्यान दे पाता है और न ही विद्यार्थी शिक्षक का पूरा लाभ उठा पाते हैं। विद्यार्थियों की संख्या कहीं कहीं इतनी अधिक हो गई है कि भवन की समस्या प्रशासन के सामने उपस्थित हो गई है। ऐसी दशा में कक्षाएँ प्रात: से मध्याह्न तक और कुछ मध्याह्न से संध्या तक। अर्थात् हर कक्षा का विद्यार्थी आधे दिन भटकता और समाज की गंदगी बटोरता है।

अनुशासन-हीनता के इन कारणों के साथ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण और है जो प्रच्छन्न है, अनायास हमारे सामने नहीं आता। वह कारण है हमारी शिक्षा के उद्देश्य की अनिश्चितता। विद्यार्थी विद्याध्ययन करने आते हैं क्योंकि पालक भेजते हैं, समाज में विद्याध्ययन का मान है। परन्तु उद्देश्यों के अभाव में विद्यार्थियों के मन में कुंठाएँ और असंतोष जन्मने लगते हैं। धीरे-धीरे उनके मन में शिक्षा और शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत होने लगती है और वे शिक्षा से सम्बन्धित सारे अनुशासन को चुनौती देने लगते हैं।

विद्यार्थियों की इस राष्ट्र-व्यापी अनुशासन-हीनता का उन्मूलन करने के लिए हमें कारणों का विश्लेषण करना होगा। अनुशासन-हीनता के कारणों में पारिवारिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ही मुख्य हैं। शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तथा विद्यार्थियों को नागरिकता की ओर आकर्षित करने के लिए इन समस्याओं का

निदान अनिवार्य है। सर्वप्रथम हमें पारिवारिक वातावरण को सुखद, शांतिपूर्ण एवं निष्ठामय बनाना होगा। अभिभावकों को अनुशासन का बीज सतर्कता से बोना होगा और बालकों को आवश्यक परामर्श से स्वतन्त्र विकास का अवसर देना होगा। गृह-कलह और पारिवारिक कटुताओं से उन्हें परे रखना भी हितकर होगा। परिवार के बाद शैक्षणिक संस्थाओं का कर्त्तव्य सामने आता है। विद्यार्थियों के समक्ष शिक्षा संस्थाओं के संचालकों को आदर्श उपस्थित करना होगा ताकि वे अनुशासन का महत्त्व समझ सकें। शिक्षकों को अपने चरित्र तथा अपनी योग्यता से उन्हें अपनाना पड़ेगा ताकि शिक्षकों के आदेश उनके लिए मधुर बंधन बन जायें। आचार-विचार और व्यवहार में शिक्षकों का अनुकरण विद्यार्थी करते ही हैं अतएव शिक्षक अनुकरणीय बने रहें यह भी आवश्यक है। विद्यार्थी स्नेह, सहानुभूति तथा पक्षपात-हीनता से जीते जा सकते हैं। उनका आक्रोश दबाव और धमकियों से भयभीत नहीं होता यह हमारे अनुभवों ने हमें बतलाया है। शिक्षा-संस्थाओं का वातावरण एक आदर्श परिवार के वातावरण के समान होतो विद्यार्थी उसके प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करेंगे। शिक्षकों को अपना कार्य-क्षेत्र विद्यालय के बाहर तक विस्तृत करना चाहिए तथा समाज में अपने विद्यार्थियों का निर्देशन करना चाहिए। अभिभावकों से शिक्षकों का सम्पर्क भी लाभदायक होता है। पर इसके लिए हमें शिक्षकों की ओर भी देखना होगा। भारत का शिक्षक आर्थिक विषमताओं और सामाजिक उपेक्षाओं का शिकार है। शिक्षा-संस्थाओं के संचालकों तथा शासन को उनकी स्थिति सुधारने का प्रयास करना चाहिए। असंतुष्ट और भूखे शिक्षकों से उत्तरदायित्व की आशा व्यर्थ है।

इधर राजनीति को लेकर समाज के एक वर्ग के विचारक यह कह

रहे हैं कि विद्यार्थी को राजनीति से दूर रहना चाहिए। इस प्रसंग पर अनेक मत हैं। जहाँ तक अपने देश की राजनीति का प्रश्न है, उसका प्रारंभ ही विद्यार्थियों से हुआ था। सन् १९२१ में महात्मा गांधी ने विद्यार्थियों को सरकारी शिक्षा केन्द्रों के बहिष्कार का मंत्र दिया था और उन्हें राष्ट्रीय आंदोलनों की ओर मोड़ा था। उस समय सभी विश्वविद्यालय राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित होने लगे थे। उसी समय राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई थी। यह सत्य है कि आज परिस्थितियाँ उस समय से भिन्न हैं - परन्तु विद्यार्थी मूल में आज भी विद्यार्थी हैं । उचित नेतृत्व का अभाव और उद्देश्यहीनता उनकी शक्ति को अंतर्राष्ट्रीयता की ओर ले जाती है। महात्मा गांधी ने जिस समय विद्यार्थियों से शक्ति-संचय किया था, उस समय हमारे समक्ष राष्ट्रीय प्रसंग था, आज जब राजनीतिक उन्हें अपने दल के दलदल में खींचते हैं तो उनके समक्ष राष्ट्रीय प्रसंग नहीं, दलगत राजनीति होती है। राष्टीयता के धरातल पर विद्यार्थियों का राजनीति में भाग लेना आज भी उतना आवश्यक है जितना उस समय था। विद्यार्थी-जीवन भावी जीवन की आधार-शिला है, अतएव देश के भावी कर्णधारों का राजनीति से परिचित होना राष्ट्रहित में ही होगा। हमें ध्यान इस बात का रखना होगा कि राजनीतिक स्पर्धा के लिए राजनैतिक और अर्ध-राजनैतिक लोग विद्यार्थियों की शक्ति अपनी नेतागीरी को बनाये रखने के लिए उपयोग में न लाने पायें। जब ऐसे देशद्रोही नेता विद्यार्थी-वर्ग का नेतृत्व करने लगते हैं, तभी अनुशासन-हीनता का तांडव होता है।

सामाजिक विषमताएँ इसके बाद भी विद्यार्थियों को पथभ्रष्ट करने से बची रहती हैं। यदि पिछले तीनों स्तरों पर विद्यार्थियों को वास्तविक निर्देशन मिल जाये तो सामाजिक विष उनके ऊपर अधिक प्रभाव नहीं

डाल पायेंगे। अभिभावक, शिक्षक और राजनैतिक दलों के कार्यकर्त्ता सामाजिक भी हैं, अतएव उन्हें अपने क्षेत्र से आगे बढ़कर समाज में भी विद्यार्थियों की चिन्ता करनी होगी। इसमें शासन का अपेक्षाकृत अधिक सहयोग अपेक्षित है। उन कारणों पर, जो विद्यार्थियों को पथभ्रष्ट कर सकते हैं, शासन को प्रतिबन्ध लगाना होगा। दूषित मनोवृत्ति उपजाने वाली पत्रिकाएँ, पुस्तकें और चलचित्रों के साथ शासन को कठोरता से पेश आना चाहिए। समाचार पत्रों को यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना होगा कि उनके समाचार और विज्ञापन कच्चे विचार वाले और अदूरदर्शी विद्यार्थी भी पढ़ते हैं।

विद्यार्थियों की अनुशासन-हीनता व्यक्ति-स्वातंत्र्य की देन भी है। इस तथ्य पर दो मत नहीं हो सकते। स्वतंत्रता व्यक्ति के अधिकार पर बल देती है, और अधिकारों का उचित उपयोग हमारी सभ्यता का प्रमाण है। संभवत: विद्यार्थियों ने अपने अधिकार का उचित उपयोग नहीं किया। लेकिन अब समय आ गया है जब उन्हें अपनी बुद्धि और शिक्षा की सहायता से अपनी क्षणिक भावनाओं को नियंत्रित करके राष्ट्रीयता की बात पर गंभीरता से विचार करना होगा। अपने व्यक्तित्व को समाज के साथ जोड़कर उन्हें हर परिस्थिति पर विचार करना होगा। उनका असंतोष, उनका आक्रोश अपने स्थान पर उचित हो सकता है पर उसे समाज के परिप्रेक्ष्य में देखना अब उनके लिए आवश्यक हो गया। उनकी अपूर्व शक्ति और अनोखी कार्य-क्षमता पर राष्ट्र को गर्व है, इसलिए राष्ट्र की यह कामना है कि उनकी शक्तियों का उचित मूल्यांकन हो और उसका सच्चे अर्थों में राष्ट्र उपयोग करे। यह तो अभी कल ही की बात है जब विद्यार्थियों ने संगठित होकर अमेरिका और इंगलैंड की सामाजिक व्यवस्था

को चुनोती दी, फ्रांस के सामन्तवाद को धक्का दिया और पाकिस्तान की तानाशाही को समाप्त कर दिया। हमारा राष्ट्र भी विद्यार्थी-वर्ग से अपेक्षा करता है कि वह अनुशासित होकर सामाजिक तथा राजनैतिक असमताओं तथा विषमताओं से जूझकर राष्ट्रीय वातावरण को पवित्र करेगा।

आज का युग बौद्धिक युग है। बुद्धि बल पर आज के राष्ट्र शक्तिशाली हुए हैं और बुद्धि के भरोसे ही उनकी सामाजिक व्यवस्था चल रही है। अतएव हम भी बुद्धिजीवी वर्ग की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमारा विद्यार्थी-वर्ग ही बुद्धिजीवी वर्ग का प्रारंभिक रूप हैं हमें इसीलिए अपने विद्यार्थियों के दैनिक जीवन की ओर ध्यान देना है। अनुशासन, बौद्धिक स्तर पर भीतरी नियंत्रण है। यदि हम अपने विद्यार्थियों को भीतर से बाँधकर उनकी समस्याओं का योग्य हल प्रस्तुत करते हैं तो बाहर से वह अपने आप नियमित हो जायेंगे। उनके हर क्षण के सदुपयोग का हमें ध्यान रखना होगा और उनकी शक्तियों को राष्ट्रीयता के मार्ग पर लगाना होगा। वास्तव में स्वाधीन भारत की सारी भावी योजनाओं की पूर्ति और सारे उत्थान की कहानी की भूमिका विद्यार्थियों की अनुशासित शक्ति से ही संभव है।

अभ्यास :

उपर्युक्त उदाहरणों को ध्यान से पढ़कर उसी के अनरूप विद्यार्थी निम्नलिखित शीर्षकों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास कर सकते हैं -

सामाजिक / सामयिक निबन्ध

१. भारतीय नारी

२. विज्ञान और समाज

३. दूरदर्शन और सामाजिक विकास

४. दहेज : एक सामाजिक अभिशाप

५. महँगाई: समस्या और समाधान

राजनीतिक निबन्ध

६. हमारे लोकतन्त्र की समस्याएँ

७. शिक्षा और राजनीति

८. आम चुनाव के किसी मतदान केन्द्र का दृश्य

सांस्कृतिक निबन्ध

९. नैतिक शिक्षा : क्यों और कैसे

१०. ओड़िशा के पर्व-त्योहार

११. रथयात्रा

१२. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

१३. इक्कीसवीं सदी का भारत

साहित्यिक निबन्ध / शैक्षिक निबन्ध

१४. मेरा प्रिय लेखक : प्रेमचन्द

१५. जनवादी कवि : तुलसी दास

१६. साहित्य और समाज

१७. पुस्तकालय का महत्व

१८. नई शिक्षा-नीति

१९. समाचार-पत्रों की उपयोगिता

वैज्ञानिक निबन्ध

२१. विज्ञान : वरदान या अभिशाप

२२. भारत में वैज्ञानिक प्रगति

२३. विज्ञान, धर्म और समाज

आत्मकथात्मक निबन्ध

२४. अगर मैं मुख्यमन्त्री होता

२५. एक शिक्षक की आत्मकथा

२६. मेरी पहली रेलयात्रा

२७. मेरे जीवन का लक्ष्य

जीवनीपरक निबन्ध

२८. नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

२९. मिसाइल मानव अब्दुल कलाम

३०. मदर टेरेसा

सूक्तियों पर निबन्ध

३१. कल करे सो आज कर

३२. पराधीन सपनेहुँ सुख नाहिं

३३. नर हो, न निराश करो मन को

३४. मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना

विचारात्मक / चिन्तनपरक निबन्ध

३५. आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद

३६. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

३७. भारतीय धर्म और दर्शन

प्रकृति सम्बन्धी निबन्ध

३८. वसन्त ऋतु

३९. बाढ़ की समस्या

४०. नन्दन कानन में एक दिन

४१. वृक्षारोपण : एक सामाजिक अनिवार्यता

इतिहास सम्बन्धी निबन्ध

४२. भारत का स्वाधीनता संग्राम

४३. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई

४४. स्वतन्त्रता सेनानी बक्सि जगबन्धु

४५. सम्राट अशोक और कलिंग-युद्ध

४६. विश्व-विस्मय कोणार्क

खण्ड (क) अपठित अनुच्छेद (गद्य और पद्य)

भाषा-शिक्षण में किसी भी अपठित अनुच्छेद के अवबोध की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्यार्थियों के लिए अपठित अनुच्छेद का अध्ययन इसलिए जरूरी है कि इससे उनमें ध्यानपूर्वक पढ़ने का अभ्यास विकसित होता है। किसी भी चीज को हल्के-फुल्के ढंग से न लेकर गम्भीरता से उसकी तह तक जाकर स्पष्ट समझना एवं दूसरों को अच्छी तरह समझा पाना, अपठित अध्ययन का उद्देश्य है। भाषागत दक्षता, अध्ययन में एकाग्रता, गहरी सूझबूझ एवं अभिव्यक्ति की क्षमता में वृद्धि, अपठित अंश का उद्देश्य है।

अपठित गद्यांश या पद्यांश पाठ्यक्रम से भिन्न किसी पुस्तक, समाचारपत्र अथवा पत्र-पत्रिका से होता है, जिसके विषय और शैली से, आप पहले से परिचित ही न हों। लेकिन अपरिचित विषय को पढ़कर उसे भलीभाँति समझना उसे अपने शब्दों में दूसरे के समक्ष प्रस्तुत करना, लेखकीय आशय समझकर उसका शीर्षक निर्धारण करना, सम्भावित प्रश्नों को ढूँढ निकालना एवं आवश्यकतानुसार उसकी व्याख्या करना, उद्देश्य स्पष्ट करना एवं उसका सारांश, भावार्थ, मुख्यार्थ, संक्षेपण, विस्तारण भाषान्तरण आदि अपरिचित विषय के अध्ययन के अन्तर्गत है। इसके निरन्तर अभ्यास से विद्यार्थी के भाषा-ज्ञान के साथ-साथ विषय को समझने, हृदयगंम करने तथा व्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है।

अपठित से सम्बन्धित प्रश्नों को हल करने के लिए उसके मूल भाव को समझना बहुत जरूरी है। एक बार में समझ न पाए तो एकाधिक बार उसे ध्यान से पढ़ना चाहिए। फिर अवतरण के मूल भाव, महत्वपूर्ण विचार एवं विशिष्ट शब्दों को रेखांकित कर लीजिए। अनेकार्थवाले शब्दों का प्रसंगानुकूल अर्थ ही ग्रहण करें।

पूछे गए प्रश्नों के उत्तर निर्दिष्ट अवतरण में ही मौजूद रहते हैं। चूँकि प्रश्नों के क्रम में ही अवतरण में उत्तर रहते हैं, आपको उसी क्रम में ही उत्तर ढूँढना चाहिए। उत्तर में मूल अवतरणों के शब्दों का प्रयोग भले ही किया जाय, पर भाषा-शैली अपनी होनी चाहिए। लेकिन ध्यान रहे कि उत्तर में न तो अपनी ओर से कुछ जोड़ना है और न ही कोई उदाहरण देना है। प्रश्न जितना पूछा जाय उत्तर भी उतना ही दीजिए। अनावश्यक या अप्रासगिक उत्तर से बचिए।

अक्सर अपरिचित अंश के लिए कोई शीर्षक सुझाने को कहा जाता है। अगर शीर्षक के लिए न भी कहा जाय, तब भी शीर्षक देने में कोई हानि नहीं है। लेकिन शीर्षक निश्चित रूप से उसी अवतरण पर ही केंद्रित होना चाहिए। वह यथासंभव संक्षिप्त, सरल एवं मूल भाव को पूरी तरह व्यक्त करनेवाला होना चाहिए। शीर्षक के लिए मूल अवतरण में से कोई शब्द अगर सही लगे तो उसे लिया जा सकता है।

उदाहरण-१

हमारी धरती ने बापू को जन्म दिया। किन्तु इस धरती का यह सौभाग्य न हुआ कि ने महापुरुष जिश देश की पराधीनता

की बेड़ियाँ काटीं और देश की प्रतिष्ठा को संसार में ऊँचा किए, वह अपने द्वारा प्रतिष्ठित स्वतन्त्र राष्ट्र में जीवित रहकर विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व का अपना स्वप्न पूरा नही कर सका। महात्माजी को इससे अच्छी मृत्यु और क्या मिल सकती थी कि मानवता की रक्षा करते हुए उन्होंने अपने प्राण दिए।

प्रश्न- (i) किसने बापू को जन्म दिया ?

(ii) महात्मा जी ने हमारे लिए क्या किया ?

(iii) क्या महात्मा जी विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व का अपना सपना पूरा कर सके ?

(iv) उन्होंने कैसे अपने प्राण दिए ?

(v) प्रस्तुत अवतरण के लिए उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

अपेक्षित उत्तर

(i) हमारी धरती ने बापू को जन्म दिया।

(ii) महात्मा जी ने देश की पराधीनता की बेड़ियाँ काटीं और उसकी प्रतिष्ठा को संसार में ऊँचा किया।

(iii) महात्मा जी विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व का अपना सपना पूरा न कर सके।

(iv) मानवता की रक्षा करते हुए उन्होंने अपने प्राण दिए।

(v) शीर्षक है-'गाँधी जी का सपना'

उदाहरण-२

राष्ट्रभाषा से **उस भाषा से है जो** अभिप्राय है अन्तर्प्रान्तीय व्यापार और सार्वजनिक व्यवहार से सभी प्रान्तीं में रहनेवालों द्वारा बरती जाए और बद्रीनाथ से रामेश्वरम तक तथा अमृतसर से कटक तक सभी स्थानों में परस्पर बातचीत करने और विचार-विनिमय में काम में लाई जाए। राष्ट्रभाषा होने की अधिकाधिक योग्यता हिन्दी में आनी और लानी चाहिए। आज के युग में वैज्ञानिक आविष्कार के कारण दुनिया में स्थान और समय की दूरी समाप्त होती जा रही है, **ऐसेमें** कोई भी भाषा दूसरी भाषा के सम्पर्क से अपने को अछूती नहीं रख सकती। हिन्दी का यह एक विशेष गुण है कि वह **सस्कृत** अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों को अछूत नहीं समझाती। बहिष्कार नीति तो वह कदापि स्वीकार नहीं कर सकती और न विदेशी शब्दों को ही बाहर रखकर वह अपनी उन्नति कर सकती है। हिन्दुस्तान में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख आदि सभी बसते हैं। इसी प्रकार यदि हम सभी भाषाओं से उत्तम और आवश्यक शब्द लेंगे, तो हिन्दी **विकसित होगी** ।

प्रश्न-

(i) राष्ट्रभाषा से अभिप्राय क्या है ?

(ii) आज के युग में स्थान और समय की दूरी कैसे समाप्त होती जाती है ?

(iii) भाषा के क्षेत्र में बहिष्कार नीति क्या है ? हिन्दी इस नीति को क्यों स्वीकार नहीं कर सकती ?

(iv) हिन्दी के विशेष गुण क्या हैं ?

(v) प्रस्तुत अवतरण के लिए उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

अपेक्षित उत्तर

(i) राष्ट्रभाषा से यह अभिप्राय है कि वह अन्तरप्रान्तीय व्यापार और सार्वजनिक व्यवहार से सभी प्रान्तों में रहनेवालों द्वारा बरती जाए तथा सभी स्थानों के लोग परस्पर बातचीत करने और विचार-विनिमय में काम में लाई जाए।।

(ii) आज के युग में वैज्ञानिक आविष्कार के कारण दुनिया में स्थान और समय की दूरी समाप्त होती जा रही है।

(iii) हिन्दुस्तान में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख आदि एक साथ बसते हैं। सबकी भाषा के शब्दों को साथ लेकर हिन्दी बनी है। अतः भाषा के क्षेत्र में विदेशी शब्दों के बहिष्कार नीति को हिन्दी कदापि स्वीकार नहीं कर सकती।

(iv) हिन्दी का विशेष गुण है कि उसने **संस्कृत,** अरबी, फारसी अंग्रेजी आदि के शब्दों को कभी अछूत नहीं समझा।

(v) शीर्षक है-'राष्ट्रभाषा हिन्दी'।

अभ्यास-I

१. निम्नलिखित गद्यांश के आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

(क) प्राचीन भारत में नारी सन्तानोत्पत्ति के साधन मात्र नहीं थी, वरन् वह पुरुष के हर राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में उसकी संगिनी थी। उसका समान आदर था, समान प्रतिष्ठा थी और उसकी विचारों का समान स्थान था। उस युग में हमें न जाने कितनी ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने शासन का संचालन किया, युद्ध-कौशल का परिचय दिया और अपनी विद्वता से अनेकों को परास्त किया। उस समय नारी को अपने रुचि के अनुकूल जीवन-साथी चुनने का अधिकार था। हमारे यहाँ की स्वयंवर-प्रथा इसका प्रमाण है। परन्तु भारतीय समाज विदेशी शासन का अंग बना, नारी की स्थिति बदल गई। अपनी वासना से खीजे और पुरुषार्थ में परास्त पुरुषों ने सारा क्रोध नारी पर उतारा। उनका समादर समाप्त किया गया, उसकी स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगा दिया और उसे वासना की पुतली बनाकर दासी के स्थान पर बैठा दिया गया।

प्रश्न-

१. प्राचीन भारत की नारी कैसी थी ?

२. उस युग में कैसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है ?

३. हमारे यहाँ की स्वयंवर-प्रथा किसका प्रमाण है ?

४. विदेशी शासन में नारी की स्थिति कैसे बदल गई ?

५. इस अवतरण के लिए उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

उदाहरण-II

लोकतन्त्र में लोक-विचारों तथा लोक-मान्यताओं के निर्माण में समाचारपत्र और चलचित्र बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यदि समाचारपत्रों और चलचित्रों ने राष्ट्रीयता की उपेक्षा की तो निर्विवाद है कि अपनी राष्ट्रीयता को गहरा आघात लगेगा। इन माध्यमों को अपनी शक्ति का अनुमान करके निम्न स्तर की भावनाओं से स्वयं को ऊपर रखना चाहिए। समाचारपत्र आदि अनतर्राष्ट्रीय समाचार और थोथे व्यक्ति के प्रचार में लग गए और चलचित्र मनुष्य की दुर्बलताओं और कुप्रवृत्तियों के चित्रण को ही मनोरंजन का लक्ष्य समझ बैठें तो हमारे समाज का बड़ा अहित होगा। लोकतंत्र तो समाज की हर इकाई से अपने-अपने दायित्व की अपेक्षा करता है। यदि समाचारपत्र और चलचित्र वर्तमान संदर्भ में अपने अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं तो हमारे लोकतन्त्र को शक्ति और शान्ति मिलकर रहेगी।

प्रश्न-

(i) लोकतन्त्र में समाचारपत्र और चलचित्र की क्या भूमिका हैं?

(ii) समाचारपत्र और चलचित्रों को राष्ट्रीय हित में क्या करना चाहिए ?

(iii) समाचारपत्र और चलचित्रों के क्या करने से समाज का बड़ा अहित होगा ?

(iv) हमारे लोकतन्त्र को शक्ति और शान्ति कैसे मिलेगी ?

(v) प्रस्तुत अवतरण के लिए उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

अपठित वाक्यांश

अपठित गद्यांश से सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तर देने के लिए भी उन तमाम निर्देश सहायक सिद्ध होंगे, जो अपठित गद्यांश के सन्दर्भ में कहे गये हैं। साथ ही काव्य में कभी कभी गूढ़ अर्थ छिपा रहता है। अतः बार बार पढ़कर काव्य के संदर्भ के अनुसार उस रहस्य तक पहुँचा जा सकता है। काव्य में अक्सर प्रतीकात्मक प्रयोग भी होते हैं। कविता अगर वर्णनात्मक हो तो अर्थ स्पष्ट और साधारण होता है।

उदाहरण-I

कानपुर के नाना की मुँहबोली बहन 'छबिली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेलती थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी यही सहेली थीं ।
वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जुबानी थीं,
बुन्देले हरबोलों के मुख से हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।।

प्रश्नः (i) लक्ष्मीबाई के कानपुर के नाना कौन थे ?

(ii) पिता की इकलौती सन्तान कौन थी ?

(iii) लक्ष्मीबाई की सहेलियाँ कौन-कौन थीं ?

(iv) किसकी गाथाएँ उन्हें जबानी याद थीं ?

(v) कवि ने किसके मुँह से किसकी कहानी सुनी थी ?

अपेक्षित उत्तर

(i) लक्ष्मीबाई कानपुर के नाना साहेब की मुँहबोली बहन थी ।

(ii) लक्ष्मीबाई अपने पिता की इकलौती सन्तान थी।

(iii) बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी-ये सब लक्ष्मीबाई की सहेलियाँ थीं।

(iv) वीर शिवाजी की गाथाएँ उन्हें जबानी याद थीं।

(v) बुन्देलखण्ड के निवासी बुन्देले और हरबोलों के मुख से कवि ने यह कहानी सुनी थी कि मर्दों की भाँति लड़नेवाली झाँसी की रानी थी।

शीर्षक-'झांसी की रानी' कवयित्री- सुभद्रा कुमारी चौहान

उदाहरण-II

हँसता है केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।

अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।

प्रश्नः (i) तारा कहाँ हँसता है ?

(ii) कौन किसका अभिषेक करता है ?

(iii) सखी नीरवता के साथ वह कहाँ से आ रही है ?

(iv) 'अलसता की-सी लता' और 'कोमलता की कली' किसके लिए कहा गया है ?

(v) वह किस प्रकार से और कहाँ से आ रही थी ?

अपेक्षित उत्तर

(i) गुँथ हुए घुँघराले काले बालों से अर्थात अन्धरे आकाश में तारे का प्रकाशित होना।

(ii) तारा अपने हृदय-राज्य की रानी अर्थात सन्ध्या का अभिषेक करता है।

(iii) सन्ध्या की सखी, सहचरी है नीरवता और उसे साथ लिए वह आ रही है।

(iv) सन्ध्या का मानवीकरण कर कवि उसकी धीमी चाल और कोमल परिवेश की ओर इशारा कर रहे हैं।

(v) वह छाया की तरह आकाश-पथ से आ रही है।

शीर्षक-'सन्ध्यासुन्दरी' कवि- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

अभ्यास-I

निम्नलिखित काव्यांशों को ध्यान से पढ़कर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

मुसलमान और हिन्दू हैं दो
मगर एक उनका प्याला
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला।
दोनों रहते एक न जब तक
मन्दिर-मस्जिद में जाते
लड़वाते हैं मन्दिर-मस्जिद
मेल कराती मधुशाला।

प्रश्न: (i) किसका प्याला एक है ?

(ii) किसका मदिरालय और हाला एक है ?

(iii) दोनों कब तक एक नहीं रहते ?

(iv) हिन्दू-मुसलमानों को कौन लड़ाता है ?

(v) हिन्दू-मुसलमानों का मेल कौन कराता है ?

शीर्षक-'मधुशाला' कवि- हरिवंशराय 'बच्चन'

उदाहरण-II

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे पूज्य प्राणी है।
क्षत्रीय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।
तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतलाके,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखलाके,
हीन मूल को देख जग गलत कहे या ठीक
वीर खींचकर रहते हैं इतिहासों में लीक।

प्रश्नः

(i) कवि ने श्रेष्ठ ज्ञानी किसे कहा है ?
(ii) सबसे पूज्य प्राणी कौन है ?
(iii) कवि के अनुसार क्षत्रिय कौन है ?
(iv) तेजस्वी लोग जग से प्रशस्ति कैसे पाते हैं ?
(v) वीर पुरुष हमेशा क्या करते रहते हैं ?

अभ्यास-III

दोनों ओर प्रेम पलता है
सखि, पतंग भी जलता है, हाँ दीपक भी जलता है।
सीस हिलाकर दीपक कहता-
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता ?
पतंग पड़कर ही रहता। कितना विह्वलता है।

दोनों ओर प्रेम पलता है।

बचकर हाय। पतंग मरे क्या ?

प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या ?

जले नहीं तो मरा करे क्या ? क्या यह असफलता है ?

दोनों ओर प्रेम पलता है।

प्रश्नः

(i) किन दोनों की ओर से प्रेम पलता है ?

(ii) पतंग से दीपक क्या कहता है ?

(iii) पतंग विह्वलता दिखाकर क्या करता है ?

(iv) 'बचकर हाय। पतंग मरे क्या' से कवि क्या कहना चाहता है ?

(v) क्या पतंग चाहता है कि प्रणय के बिना जीवन जीना है ?